Chapter-6

षष्ठ अध्याय :

गीतों एवं नवगीतों का शिल्पगत एवं भाष्य स्वरूप

षष्ठ अध्याय :

गीतों एवं नवगीतों का शिल्पगत एवं भाष्य स्वरूप

नवगीत में बिम्ब विधान :-

कल्पना के इंगित संवेद्य व्यापार की अनिवार्य परिणति बिम्ब रचना में होती है। नवगीतकारों ने अपनी कल्पना की इस दिशा को उत्कर्षोन्मुखी बनाया है। इसीलिए नवगीत समृद्ध बिम्बों का काव्य है। प्रत्येक नवगीतकार के बिम्बों में एक खास विशेषता है जो उनके काव्य शिल्प की मौलिकता का आधार बनाती है और हर नवगीतकार की काव्य सृष्टि में विशिष्टता का समावेश कर उसकी अलग पहचान बनाती है। नवगीत में कठोर यथार्थ की अभिव्यक्ति का संकल्प पूरा करने हेतु वस्तुपरक, सार्थक बिम्बों की सर्जना की गई है।

नवगीत पर बिम्ब विधान के प्रभाव का आकलन करते हुए शंभुनाथ सिंह ने कहा है- **''नवगीत पूर्णतः बिम्बधर्मी काव्य है। उसकी बुनावट बिम्बों के ताने बाने से हुई है। किन्तु उसके बिम्ब पूर्ववर्ती कविता के अलंकृत, अनुकृत, रूढ़ अथवा काल्पनिक नहीं है। उसमें या तो ऐसे प्रातिभ बिम्बों का प्रयोग हुआ है जो पाश्यंतीवाक् के स्तर पर अभिव्यक्त होने के कारण बिम्ब सर्वथा नवीन, अछूते और अकल्पनीय हैं, या उसमें अधिकतर यथार्थ जगत के अनुद्घाटित आयामों के अप्रयुक्त बिम्ब प्रयुक्त हुए हैं। जैसे वैज्ञानिक और औद्योगिक क्षेत्र के जीवन बिम्ब, महानगरों के त्रासद और नाटकीय बिम्ब, ठेठ ग्रामीण अंचलों एवं वन पर्वतों के आदिम तथा मिथकीय बिम्ब, भोगी हुई जीवन अनुभूतियों के संश्लिष्ट बिम्ब उस चेतन**

के अंधकार में निहित वासनाओं के छद्म रूपों के खंडित एवं प्रतीकात्मक बिम्ब तथा राजनीतिक-सामाजिक विसंगतियों और विडम्बनाओं के सांकेतिक और ध्वन्यात्मक बिम्ब। इन बिम्बों की पहचान ही नवगीत की सही पहचान है।''[1]

देवेन्द्रशर्मा 'इन्द्र' नवगीत में बिम्ब विधान के संदर्भ में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं - **''अभिनव अप्रस्तुत मौलिक बिम्ब, सहजभाषा और हटके बिम्ब नवगीत की खास पहचान है, नवगीतों में बिम्बों और प्रतीकों में अनुभूति की सांद्रता अनुभव की वस्तु है।''**[2]

''बिम्बविधान के द्वारा काव्य के उत्कर्ष में अभिवृद्धि होती है। सूक्ष्म और जटिल संवेदनाओं को प्रभावोत्पादकता के साथ काव्यबृद्ध किया जा सकता है, बिम्ब विधान के द्वारा काव्य की सर्जनात्मक शक्ति का विकास होता है।''[3]

''पुरा प्रतीकों से लेकर अद्यतन बिम्बात्मकता के स्वप्नलोकों और यथार्थ भूमियों तक उसकी निर्बाध (नवगीत की) पग-ध्वनियाँ सुनी जा सकती हैं।''[4]

''यह तो छन्दानुशासित जुलूस है जो नए बिम्बों और प्रतीकों के झण्डे लेकर नए बोध की जमीन पर निरन्तर आगे बढ़ता चला जा रहा है।''[5]

''छठे दशक के बाद से नवगीत अपनी छांदसिकता बिम्बात्मकता, शिल्पगत नवीनता में अधिक खुलकर सामने आया है।''[6]

राजेन्द्र गौतम के मतानुसार -

''शिल्प के स्तर पर भाषा की आंतरिक ऊर्जा, दिगंतों को झंकृत करने वाले लयों के आवर्त बिम्बों की राग-दीप्त एवं संदर्भोपेक्षी विविधता, शब्दों का युगानुरूप संस्कार पाठक को संवेदना के स्तर पर छूने वाला अप्रस्तुत विधान नवगीत की सर्वोपरि उपलब्धि है।''[7]

नवगीत के बिम्ब विधान में प्रकृति की भूमिका :- नवगीत में बिम्ब विधान की सृष्टि हेतु प्रकृति की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। छायावादी काव्य में भी प्रकृति की भूमिका अहम् रही हैं। शंभुनाथ सिंह के गीतों में बिम्ब विधान दो स्तरों पर दृष्टिगोचर होता है। प्रथम स्तर पर उन्होंने आंचलिक गीतों में बिम्ब निर्माण प्राकृतिक उपादानों एवं लोक अभिप्रायों से किया

है। दूसरे स्तर पर आधुनिक युगबोध की अभिव्यंजना हेतु गीतों में यथार्थ परिवेश की निमित्त के लिए आधुनिक वैज्ञानिक जीवन संदर्भों के प्रयोग से बिम्ब योजना की है। प्रकृति उपादानों से सजा एक बिम्ब दृष्टव्य है -

''ये छतों झूलती रस्सियाँ काट दें
इन घरों में खुदी खाइयाँ पाट दें
हाट में, बाट में, द्वार पर आँगने,
में उगी जंगली झाड़ियाँ काट दें।''[8]

वीरेन्द्र मिश्र जी ने **''अविराम चल मधुवंती''** में अनेक प्राकृतिक बिम्बों की सर्जना की है। अंबर, धरा, सागर, पर्वत को मूर्तित करने वाले अनेक भव्य विराट बिम्बों की रचना उनकी अलग पहचान बनाती है। इसका एक बिम्ब प्रस्तुत है-

''अभी अभी आया है सावन का पद यात्री
अभी चला जायेगा
और धनुष द्वारे की, नील क्षितिज देहरी पर
फूल चढ़ा जायेगा
ज्वार उठेगा फिर भी
और कहेगा फिर भी
जाना क्या बरखा को ओ मांझी भाई रे।''[9]

नवगीत को जितने मौलिक बिम्ब देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' ने दिये है, उतने शायद थोड़े ही कवियों ने दिये होंगे। इनके बिम्बों में एक सघन बुनावट है, सांस्कृतिक चेतना की सम्पन्नता को व्यंजित करनेवाले अनेक बिम्ब इनके गीतों में दृष्टव्य है, प्रकृति का प्रयोग इनके बिम्ब विधान में एक विशिष्ट शैली में हुआ है-

''कल्पतरू
समझे जिन्हें हम
वे खजूरी हो गये

व्यर्थ गूंगी प्रतीक्षा ने
एक फल की
आस की
पत्तियाँ सूखी बिछीं थी
राह में मधुमास की
बांस, कांस, बबूल
वन में
जी–हुजूरी बो गये।''[10]

माहेश्वरी तिवारी ने भी अपने गीतों में मौलिक बिम्ब की सर्जना की है। उनके बिम्बों में मुख्य रूप से जन-सामान्य के जीवन की विसंगति, यातना, व्यथा एवं विवशता के स्वर उनके गीतों का प्रमुख प्रतिपाद्य रहा है। यथा-

''कोई आदिम जंगल
शायद मुझमें जिन्दा है
दिन मेमना सरीखा लगता
फंसा भेड़ियों में
दूब बनी गोखरू
चुभ रही नर्म एड़ियों में
कोई भूरा बादल
शायद मुझसे जिन्दा है।
भीतर से हिंसक आवाजें
रह–रह आती हैं
बर्बरता के शिलालेख
हमसे पढ़वाती हैं
सदियों का कोलाहल
शायद मुझमें जिन्दा है।''[11]

छायावादी काव्य और छायावादोत्तर काव्य की तरह नवगीत ने भी बिम्ब-विधान को सहजता से अपनाया, किन्तु जीवन की विविधता का चित्रांकन करने वाले नवगीतकारों ने अपने बिम्बों का चयन जीवन के वैविध्य से किया है। एक ओर यदि गृहस्थ जीवन के विभिन्न पक्षों का हृदयस्पर्शी उद्घाटन है, तो दूसरी ओर प्राचीन संस्कृति से आधुनिक बोध को अभिव्यंजित करने का सहज प्रयास भी देखा जा सकता है -

''कांस कुछ करील
कुछ बबूल हो गये !
हम सब,
इतिहासों की भूल हो गये !
कल के मिजराव
आज बघनखे हुए,
मुरझाये फूल,
ताख पर रखे हुए,
रंग-गंध से
नाते दूर के हुए,
धुंधलाये बिम्ब
नखत धूल हो गये !
मौसम के माथे
यह क्या व्यथा बदी,
शीशे में काँप रही
बीसवीं सदी,
बालू में डूब गई
भीतरी नदी;
उड़ते ध्वज
धँसते मस्तूल हो गये।''[12]

गीतकार रामदरश मिश्र के बिम्बों की रचना का प्रमुख आधार 'प्रकृति' है। प्राकृतिक उपादानों के द्वारा उन्होंने ठोस, संश्लिष्ट, एवं कलात्मक बिम्बों की रचना की है, उसमें वर्ण-वैशिष्टय और स्पष्ट-वैशिष्ट्य् विशेष रूप से दर्शनीय हैं। साथ ही उन्होंने अपने बिम्बों को एक गतिशील प्राणवत्ता देने के लिए मानवीकरण का प्रयोग किया है-

''बहने लगी नदी ज्यों
अपने ही भीतर खोयी थी
जाग उठी फिर प्यास कि जैसे
मरी नहीं थी, सोयी थी
बजने लगा अनन्त स्वरों में
फिर बसन्त पतझर पर।
लिपियों से भर गया पृष्ठ-सा
यह लम्बा सन्नाटा
पल पल चुभने लगा हवा को
ज्यों गुलाब का काँटा
सुबह-सुबह चुपचाप रख गया
कौन फूल था द्वार पर।''[13]

रवीन्द्र भ्रमर के गीतों में भी बिम्बों का सटीक प्रयोग हुआ है। उनके प्रथम संकलन में जहाँ विविधता और व्यापकता अधिक है, वहाँ **''सोन मछरी मन बसी''** में एक विशिष्ट संदर्भ को नई भाव भंगिमाओं में प्रस्तुत किया गया है, इस संग्रह के गीतों में प्रतीकात्मकता तथा श्रृंगारात्मकता का समन्वय हुआ है, यथा-

''नीली-सी चिड़िया
उसके नन्हें-नन्हें पंख
कहाँ बांधू अपना पैगाम
मेरी सुबह कूकती चहकती है।''[14]

वीरेन्द्र मिश्र का काव्य भी बिम्ब की दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध है। साथ ही उसमें एक क्रमिक विकास भी देखने को मिलता है, सातवें दशक में उनके द्वारा लिखित गीतों में प्रयुक्त बिम्ब जहाँ अधिक समृद्ध हैं, वहीं आठवें दशक के उनके गीतों में व्यंग्य को धार देने के लिए वस्तुपरकता के तत्व ज्यादा हैं। **'अविराम चल मधुवंती'** में उन्होंने अनेक प्रकृति बिम्बों का निर्माण किया। अंतरिक्ष, पृथ्वी, पर्वत, सागर आदि को मूर्तिमान करने वाले कई भव्य एवं विराट बिम्बों की जो सृष्टि इन्होंने की, वे उनके गीतों की नवीन पहचान है, सावन के यात्री का यह बिम्ब इसी प्रवृत्ति का परिचायक है -

''अभी अभी आया है सावन का पद यात्री
अभी चला जायेगा
और धनुष-द्वार की, नील क्षितिज देहरी पर
फूल चढ़ा जायेगा
ज्वार उठेगा फिर भी
और कहेगा फिर भी
जाना क्या बरखा को ओ मांझी भाई रे।''[15]

अनूप अशेष के बिम्बों में आंचलिकता की प्रवृत्ति तथा लोकमन की अभिव्यक्ति विद्यमान है। उनके बिम्बविधान में आदिम गंध रची बसी है। वस्तुतः उसमें प्रकृति परक सन्दर्भों की अधिकता है। एक विशिष्ट परिवेश के यथार्थ एवं उसकी पीड़ा को अभिव्यक्त करने में उनका बिम्ब विधान समर्थ है। खंड बिम्बों के माध्यम से कई बार अपने गीतों में एक समग्र बिम्ब का निर्माण किया है -

''मैना री
सांझ-भोर प्यास लगी फिरने
पेट लगा चोंच में उतरने
काँपती प्रभाती इस कैंयकी करती
पेड़ों की याद सगे पल।''[16]

अथवा

"बाँस का टूटा हुआ जंगला
फटी भीती
बन्धु
हम यहीं रहते हैं।
भूख का यह घर
कि जैसे पेट का भूगोल
माथें पर खिंचावों की लकीरें
जले चूल्हे की
पुरानी गंध,
मन को कहाँ चीरें,
धूप में तपता हुआ पिंजड़ा
दोनो बिना तीतल
बन्धु
इनको हमी सहते हैं।"[17]

प्रकृति की साक्ष्य में अनेक मौलिक एवं हटके बिम्बों का प्रयोग नईम, ओम प्रभाकर, उमाकांत मालवीय, कुमार रवीन्द्र तथा सोमठाकुर आदि नवगीतकारों ने किया है। जो नींचे के अनुसार ध्यातव्य हैं -

"पूजकर वटवृक्ष सावित्री हवाएँ रुक गयीं
कचनार की लेने बलाएं,
लालछोही रंगीन कोपलें टहनी-टहनी
पर फूटी,
शाम एक नदी।"[18] (नईम)

"नदी पार जाते हुए पथ रेत वन को मुड़ गये
समय जैसे बाज नन्ही चिड़िया को
मार कर उड़ गया ऊँचे शिखर की ओर
पीठों पर खण्डहर पैरों में मरूथल
हाथों में खालीपन
आँखों में जलन।"[19] (ओम प्रभाकर)

"फूल नहीं बदले गुलदस्तों के
धूल मेजपोशों पर जमीं हुई,
लिखे भोज पत्रों पर झूठे हलफनामे
मुखबिर विप्लव की मुद्रा लजवन्ती
सी हुई मुई।"[20] (उमाकांत मालवीय)

"चीड़ वन में थरथराती छाँव
बर्फ ने बांधे नदी के पाँव
धूप शीशा गले सी उजली धुली सी,
नील नभ का कर रही स्वागत।"[21] (कुमार रवीन्द्र)

"हम उथले घाट गये
राग की नदी बही पावों में
नीले इस ताल पर झूल गया सूर्यमुखी फूल
उलझी है एक याद बरगद की डाल पर।"[22] (सोम ठाकुर)

नवगीतकारों ने अपने गीतों में भाषा की सहजता द्वारा बिम्ब विधान की सृष्टि की है। उनकी भाषा में कहीं भी बनावट नहीं दिखाई पड़ती। वे भाषा के सहज माध्यम से विशिष्ट शिल्प

का निर्माण करते हैं, यथा -

**"कुछ हिलती रूमालों
कुछ भीगी पलकों के
धुंधलाते अक्सों को
याद में रचाये
हर खुलती खिड़की से
कतरा कर नजरें हम
गुजरे इन कूचों से
सहमे सकुचाये
शायद ही लौटें अब
आपके शहर में।"[23]**

नवगीत में ऐसे सार्थक प्रयोग अनगिनत हैं, **"यों तो एक ही समय में एक ही भाव विचार पर अनेक कवि रचना करते हैं, किन्तु कहीं भाव तादात्म्य की कमी दिखाई देती है, कहीं ऊबड़-खाबड़ शब्दों से बिन्दास्त पदावली होती है, कहीं मुलम्मा छुटे शब्दों का प्रयोग होता है तो कहीं गीत का शरीर पूरा करने के लिए काँच की आँखों और गत्ते के कानों को फिट कर दिया जाता है।"[24]**

काव्य भाषा को बिम्बों की समृद्धि प्रदान करने का श्रेय विशेषणों के प्रयोग पर निर्भर करता है, नवगीत में विशेषणों का अपेक्षित एवं अर्थ प्रवाह प्रयोग हुआ है। इस प्रकार के प्रयोग से भाषा की क्षमता का विकास हुआ है, किन्तु बिम्ब की अतिशयता नवगीत को हानि भी पहुँचा सकती है। इस सन्दर्भ में सुप्रसिद्ध समीक्षक श्री विश्वनाथ प्रसाद नवगीतकारों को सजग करते हुए कहते हैं - **"नवगीत को केवल बिम्बधर्मी काव्य कहना पाश्चात्य बिम्ब-वादियों की उसी बात को दुहराना है कि - हमेशा बिम्बों में ही अच्छी कविता होती है, यह अन्तविरोधनी बात है कि एक ओर तो भारतीयता की पहचान की दुहाई दी जाय, दूसरी ओर नवगीत को केवल बिम्बों तक समेट कर भारतीय काव्य मूल्यों से नाता तोड़ लिया जाय। रागात्मक और व्यंजकता का नवगीत से गहरा संबंध है। नयी कविता के बिम्बों में वैविध्य अधिक है और**

नवगीत के बिम्बों में कसावट के कारण संकेत अधिक हैं, नयी कविता के बिम्ब संश्लिष्ट और विश्लिष्ट दोनों है। नवगीत के बिम्ब विश्लिष्ट अधिक हैं। नवगीत में वैज्ञानिक और यथार्थपरक बिम्ब कम, लेकिन गाँव, पर्वतों, जंगलों और नदियों के बिम्ब अधिक हैं। नवगीत के केन्द्र में जीवन का कोई राग या बोध होता है। अपने कथ्य को प्रभावशाली बनाने के लिए नवगीतकार बिम्बों का सहारा लेता है, नवगीतकार के लिए 'बिम्ब' साधन मात्र है।''[25]

नवगीत के बिम्ब विधान में वैविध्य :- नवगीत में भिन्न-भिन्न प्रकार के बिम्ब प्राप्त होते है, जो निम्नानुसार हैं-

(1) दृक बिम्ब :- दृक अथवा दृश्य बिम्ब अन्य बिम्बों की अपेक्षा अधिक मूर्त एवं मांशल होता है। पाठक के मन पर दृक बिम्ब का सीधा प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक कवि अपनी रूचि तथा प्रतिभा के अनुसार काव्य में दृश्य बिम्ब का आयोजन करता है, किसी को प्रकृति, नारी, ग्राम अथवा शहर के दृश्यांकन में रूचि होती है, तो किसी को स्थूल अथवा सूक्ष्मवर्णन में। कवि का तनमय भाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है, उमाकांत मालवीय, रमेश रंजक, रवीन्द्र भ्रमर आदि के गीतों में प्राकृतिक दृश्य-बिम्ब अधिक हैं। शंभुनाथ सिंह, धर्मवीर भारती, ठाकुर प्रसाद सिंह आदि के गीतों में ग्राम दृश्यों की प्रचुरता है। दृक बिम्बों के कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं -

''सीढ़ी से सरक गई धूप
कलशों पर ठहर गई शाम।''[26]

*** * ***

''थिर है जमुना का जल जामुनी
तिरती रे छाया मनभावनी
याद नहीं आती क्या चाँदनी।''[27]

*** * ***

''जाने किन धूप के पहाड़ों ने
रोक लिए
बरसों के अनलौटे पाँव
कंधों तक कुहरीले सागर में
डूब गए
सतरंगी सपनों के गाँव
जाने क्यों अधभीगे
अध प्यासे आँचर में
गरमाए यादों के फूल।''28

* * *

''चीर कुहासा उदित हुआ रवि सिन्धु हृदय से
लाल ऊषा के गाल मदिर अनुराग प्रणय से
छिपती जाती महानिशा की काली अलकें
उन्मीलित हो रही नलिन की तंद्रिल पलकें।''29

* * *

''इतना छोटा सा
आकाश मिला
हम अपने पंख कहाँ खोलें
सिर्फ फड़फड़ाये रह जाते हैं
जैसे गूंगो की
प्रार्थना सभा में सारे
हिलते हैं होंठ
मगर बोल नहीं पाते हैं।''30

(2) श्रव्य बिम्ब :-

ध्वनि कल्पना से उद्‌भूत काव्य बिम्बों में शाब्दिक चमत्कार अथवा ध्वन्यात्मकता के साथ अनुभूति भी संवलित रहती है। श्रेष्ठ ध्वनि चित्र में काव्यगत अनुभूति, विशेष भावदशा, स्थिति या क्रिया व्यापार का चित्रण करती है।

''पाँच जोड़ बाँसुरी
बासंती रात के बिह्वल पल आखिरी
पर्वत के पार से बजाते तुम बाँसुरी।''[31]

*** * ***

''सरसराती उड़ाने इधर से उधर
थरथराती हुई हर गली हर डगर
छोड़कर घर सभी हो गए लापता
सामने है पड़ा एक सूना नगर।''[32]

*** * ***

''गोड़ युवती की सरलतम खिलखिलाहट से
करौदों की टहनियों पर खिले उजले फूल
करूण सीत्कार गूंजा टिटहरी का, चुभा हो जैसे
महावर सी श्यामल खुरदुरी सी पगतली में शूला।''[33]

*** * ***

''तुमको पाकर जुड़ा गये हैं प्रान
मरूथल में गूंजे हैं निर्झर मान।''[34]

कवि अज्ञेय ने श्रव्य बिम्बों का विलक्षण दक्षप्रयोग अधिक मात्रा में किया है जिनका अद्‌भुत कमाल उनकी **'असाध्य वीणा'** काव्य में देखने को मिलता है, छायावादी कवियों में निराला ने सबसे अधिक श्रव्य बिम्बों का प्रयोग किया है।

(3) स्पृश्य बिम्ब :-

कवि की तीव्र एवं सूक्ष्म स्पृष्य जन्य अनुभूति से स्पृश्य बिम्बों की रचना होती है। स्पर्श से संबंधित निम्नांकित काव्य चित्र इसके अंतर्गत आते हैं -

''तिनके सी तैर गयी तनहाई

दर्द के समुन्दर से

खारी तट ने माँगी उतराई

भारी भारी स्वर से

अधरों ने सौंपी धुन शरबती गजल की।''[35]

शारीरिक स्पर्श से संबंधित बिम्ब अंतिम पंक्ति में पूर्ण होता दिखलाई पड़ता है। यथा-

''बनवासी प्यार कहीं भटक गया

मालव मन चूनर के छोर से अटक गया

आए यदि प्रीतम होगा मनुहार

पाकर के डार

जल दर्पण टेर रही,''[36]

*** * ***

''हाय, यह मुझको अचानक क्या हुआ

किस अदेखे स्पर्श ने मुझको छुआ

साँस लौटी लौट जाने के लिए

मेघ आए या बुलाने के लिए।''37

(4) घ्राणमूलक बिम्ब :-

इस बिम्ब का दूसरा नाम घ्रातव्य बिम्ब है, सूक्ष्म ऐन्द्रिय संवेदना से युक्त घ्राणमूलक बिम्ब काव्य चित्र को प्राणवंत बनाने में समर्थ होते हैं। मानव व प्रकृति संबंधित गंधों का इनमें समावेश होता है, नवगीत में इसके अनेकानेक उदाहरण प्राप्त होते हैं-

"महकते वन हों, नदी जैसी
चमकती चाँदनी हो
स्वप्न डूबे जंगलों में
गन्ध डूबी यामिनी हो।"[38]

* * *

"फड़फड़ाकर धूप के डैने
उड़ गयी दोपहर चीलों सी
महकती आलोक चंपाएँ
चुभ रही मन में करीलों सी
खुश्बुओं के गीत मुर्झाए
जो उगे थे कभी श्रृंगों पर।"[39]

* * *

"आती है मृत्युगंध देशों के पार से
पर्वती मुरिल्लों से आशंकित वायुयान और रसद लाते हैं
खुफिया अंदाजों में डूब गये हैं विहान
पंख थरथराते हैं
एक बात सुनो ! शाम देखो मत प्यार में।"[40]

* * *

"काया परायी गन्ध को
मलकर नहीं चन्दन बनी
जलाते रहे बाहर दिए
कब जिन्दगी रोशन बनी।"[41]

(5) वस्तु बिम्ब :-

वस्तुबिम्ब और दृश्यबिम्ब में अन्तर यह है कि दृश्य बिम्ब हमारी दृश्य चेतना को स्पर्श करते हैं जबकि वस्तु बिम्ब यथार्थ तथा शुष्क चित्रण से युक्त होते हैं, वस्तु बिम्ब के शुष्क उदाहरण गीतिकाव्य में कम ही मिलते हैं, यथा-

''हवा खिड़कियों के पर्दों पर छिटके गंध बबूल की
रोशनदान घुट रहे सारे
कई दिनों से गुलदस्ते पर पर्त जमी है धूल की
बिस्तर पर सिलवटें, सिलवटों पर सिगरेट की छांई
हाथ उठाऊँ, इससे पहले गमक गयी है
दीठ किसी के
नाम कढ़े रूमाल पर
धरे हथेली गाल पर।''[42]

*** * ***

''देखा होनोलूलू
देखी कुस्तुतेनिया
झिलमिल पोशाकों में नचती दुनियां
बन गए तमाशा जो रहे तमाशाई
बहरों अन्धों की इस नकील नौटंकी की
निर्देशक फरार गंजा छिद्दू नाई
रास नहीं आया कुछ हमको इस मुजरे में
हुस्न की कव्वाली, अहमद का हरमुनिया।''[43]

*** * ***

''आग से मत खेल बेटे आग से
हिल रही पूरी इमारत सीढ़ियाँ टूटी हुई मत चढ़

खोल बस्ता खोल गिनती रट पहाड़े पढ़
मत दिखा उभरी पसलियाँ बैठ झुककर बैठ
दर्द भीगा राग से।''[44]

(6) भाव बिम्ब :-

अन्तर के सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति द्वारा भाव बिम्ब की सृष्टि होती है। सभी गीतकारों के काव्य विश्व में भाव बिम्ब का आधिपत्य समान रूप से प्राप्त होता है, जैसे-

''मुर्दा टीलों से जिन्दा बस्ती तक
जख्मी अहसासों की एक नदी बहती है
हारे और थके पावों, टूटे चेहरों की
खामोशी से अनजानी पीड़ा झरती है।''[45]

यहाँ नदी का बहना, पावों का थकना, चेहरों का टूटना सभी कल्पनाशील हृदय के भावों की घुमड़न को अभिव्यक्त करते हैं, जिसकी अनुभूति संवेदनशील व्यक्ति ही कर सकता है, यहाँ ऐंद्रिय बिम्ब है, परन्तु जिस भाव की सृष्टि की गई है उससे अलगाव का अनुभव नहीं होता है।

''धूप में जब भी जले हैं पाँव घर की याद आयी
नीम की छोटी छरहरी छाँव में डूबा हुआ मन
द्वार का आधा झुका बरगद पिता माँ; बंधा आंगन
सफर में जब भी दुखे हैं घाव घर की याद आयी।''[46]

*** * ***

''अंजुरी में बाँध लिए जूही के फूल
मधुर गन्ध मन की हर गली महक गई
सुखद परस रग-रग में चिनगी दहक गयी
रोम-रोम उग आये साधों के शूल जूही के फूल।''[47]

* * *

''भावना के झील निथरी बाँधते हैं पुल
महकते शब्द बचनों के गुंजरित है मलय की पालकी
रेत गिरता है मुट्ठियों से
रीतता था जैसे कहीं अहसास मन का
जब दरकता है स्वयं का ही अहम
क्यों टूटता बादल किसी भ्रम का
मोतियों की आब वाली चेतना निश्प्रभा हुई।''[48]

(7) अश्लिष्ट बिम्ब (सरल बिम्ब):-

सरल भाव भाषा से निर्मित बिम्ब इसके अंतर्गत आते हैं। यथा-

''कुछ हिलते रूमालों, कुछ भीगी पलकों के
धुंधलाते अक्सों को याद में रचाए
हर खुलती खिड़की से कतरा कर नजरें हम
गुजरे इन कचों से सहमें सकुचाए
शायद ही लौटें अब आपके शहर में।''[49]

* * *

''घोड़ों के लिए उगी
घास है बगीचा है
कुर्सी के पाँव तले
हर पाँचवे साल
प्रजातन्त्र की सजावट है।''[50]

* * *

''झरते साखू वन में दोपहरी अलसाई
ढलवानों पर लेती रह रह अंगड़ाई

हवा है कि है

केवल झुरमुर का गाना

बार–बार गूंजता बहाना।''[51]

✻ ✻ ✻

''कानों में डालकर उंगलियाँ

सुनता हूँ दूर के धड़ाके

आँख बंद कर सहता हूँ

बेतों के बेरहम सड़ाके

भागकर कहाँ जा सकता हूँ

हवा में जकड़ दिया गया हूँ।''[52]

(8) संश्लिष्ट (जटिल) बिम्ब :–

जब एक ही बिम्ब होते हैं और अवगति उलझनमयी होती है, तब वहाँ जटिल बिम्ब की स्थिति होती है। यथा-

''चौकड़ी रही भरती

मृग सी छलनाएँ

यह खंडित रत्न–मुकुट किसको पहनाएँ

घायल दिन

किरणों की टहनी पर अटका

आँखों में सन्नाटा

घिरता मरघट का।''[53]

✻ ✻ ✻

''नीद की झुकने लगी पलकें/ टूटकर दिनकी

थकानों से/ एक भय घुसने लगा मन में/

किन अनदेखे बियावनों से/सुख लावे सी नदी में फिर

फूल सी नावें लगी तिरने।''[54]

* * *

''हिम शिखर हिलने लगे हैं
घाटियों में आग के
पग चिह्न अब मिलने लगे हैं
यह अँधेरा भाप बनकर उड़ रहा है
रोशनी का मुँह इधर ही मुड़ रहा है
फिर पंखी के पंख अपने
चोंच से सिलने लगे हैं।''[55]

(9) अलंकृत बिम्ब :-

नवगीत में सहज आत्माभिव्यक्ति को प्राधान्य दिये जाने के कारण उक्ति वैचित्र्य, ऊहात्मक कल्पना और चमत्कार प्रदर्शन से युक्त अलंकृत भाषामय बिम्ब कम ही मिलते हैं।

''नील -नलिन-नयना
मंथर-गति-मेघ-मंद्र
मुखार्जित-राजीव-चन्द्र
अविरत-अनिमिष-अतंद्र
सुरभिमयी-सुगना-संचयना।''[57]

* * *

''धुंध के बादल छटे दिन स्वर्ण पंखी हो गये
बर्फ के बादल पिघल कर
झील में बदले
चाँदनी लिखने लगी फिर
दूधिया गजलें।''[58]

* * *

''चिर आभा के प्रात, उगती उषा का आभास
चतुर्दिक ज्यों फैल जाए वन धवल हिम हास
ठीक वैसी ही तुम्हारी रूपहली पहचान
पुतलियों में पैठ अंतर पर तुली तुम कौन?
चाँदनी के पंख सी उजली धुली तुम कौन?''[59]

* * *

''तुम रोम-रोम में बसे नयन से छिपे रूप के राही
तुम पलक-पलक में छलक-छलक कर देते स्वयं गवाही
तुम शीतल शीतल छाँह प्रीति के झुलसे-झुलसे वन
तुम चाँदी के से फूल धुंए से काले काले घन में।''[60]

(10) सांद्र बिम्ब :-

सांद्र बिम्ब में शब्दों के चयन का अधिक महत्व है। एक भी शब्द अनावश्यक नहीं गृहीत किया जाता, उसमें बिखराव अवांछित है। इनके निर्माण में घनत्व प्रधान भूमिका निभाता है। डॉ. कैलास वाजपेयी ने अपने काव्य में इसका कुशलता से प्रयोग किया है- ''फांसी पर चढ़ने वालों की आंखों का अंधियारा'' पंक्ति में सचमुच त्वरा तीव्रता का यथा प्रभाव है। डॉ. वाजपेयी के शब्दों में यह पंक्ति सांद्र बिम्ब का महत्वपूर्ण उदाहरण सामने रखती है, संश्लिष्ट चित्रण सांद्र बिम्ब का महत्वपूर्ण गुण है, उसका प्रभाव भाव बिम्ब की तुलना में उतना संबंध और अंतर्मुखी न होकर मुखर अभिव्यंजना से युक्त होता है साथ ही साथ उसमें शुद्ध कौतुक प्रवृत्ति का अभाव उसे अलंकृत बिम्बों से अलग करता है। उदाहरणार्थ -

''मुंह पर ढंक लेती हो आँचल
ज्यों डूब रहे रवि पर बादल
चरवाहे की रानी जैसी
मेरी सुन्दर राह है।''[61]

(11) विवृत बिम्ब :-

विवृत बिम्ब भाव प्रधान व बौद्धिक दोनों हो सकते हैं। इसमें सरसता या रागात्मकता अनिवार्य कसौटी नहीं हैं। ये बिम्ब कल्पना वैभव प्रसूत होते हैं, किसी भी छोटे-बड़े विषय को इसमें कल्पना के आधार पर सार्वभौम बना दिया जाता है, इनके लिए गीति कविताओं की लघु काया उपलब्ध नहीं होती, इसलिए ये अपेक्षाकृत कम ही पाए जाते हैं और वे भी लम्बी गीति कविताओं में। नीरज के गीतों में विवृत बिम्ब के उदाहरण देखने को मिलते है-

''मैं उन सबका हूं कि नहीं
कोई जिनका संसार में
एक नही, दो नहीं, हजारों
साझी मेरे प्यार में
मेरा चुम्बन चाँद नहीं
सूरज का जलता भाल है,
आलिंगन में फूल न कोई
धरती का कंकाल है।''[62]

यहाँ कवि ने ''मैं'' का रूप चित्र, विस्तार के साथ प्रस्तुत किया है, अपनी उत्कृष्ट रुचियों को अनेक उपमानों के साक्ष्य में प्रस्तुत कर अधिक तीव्रता और विश्वसनीयता प्रदान की है।

वीरेन्द्र मिश्र की लम्बी कविताओं में विवृत बिम्बों का सुन्दर भंडार मिलता है, इसमें देश के अनेक रूपों को देखने और दिखाने का सुसंबंध प्रयत्न दर्शनीय है, इस चित्रात्मक गीति कविता में भारत की संस्कृति के चित्र चित्रपट के विभिन्न दृश्य सदृश नेत्रों के समक्ष तैर जाते हैं-

''त्यौहारों की धूप दिवाली के दिए
होली के रंगों बिन कोई क्या जिए
मनीपुरी के नृत्यों की चंचल परी
और भरतनाट्यम पर छिड़ती बांसरी।''[63]

छान्दस अनुबन्धन :-

"संस्कृत में ऋग्वेद के प्रारंभिक युग में छन्द का अर्थ स्रोत था।"64 इसी अर्थ को निर्दितष्ट करके यास्क ने अपने निरुक्त में छन्द को स्रोत का पर्याय माना है। कई सहस्त्र वर्ष बाद शंकराचार्य और रामानुजाचार्य ने भी 'छन्दासि' का यही अर्थ लगाया था। **"शतपथ ब्राह्मण, सामवेद, उपनिषद आदि में भी छन्द का प्रयोग विविध अर्थो में किया गया है। वाल्मीकि और चाणक्य के छन्द का अर्थ 'इच्छा' माना है, ऋग्वेद के अंतिम समय तक छन्द का विषय एक शास्त्र के रूप में छन्दशास्त्रीय दृष्टि से स्वीकृत हो चुका था।"**[65]

"रवीन्द्रनाथ ठाकुर मात्रा संख्या और विशेष को गीत तथा इन दोनों के संयोग को छन्द मानते हैं। उन्होंने छन्द का प्रयोग इच्छा, अनुशासन, व्यवहार व्यवस्था, रूप, साहित्य आदि अर्थो में भी किया है।"[66]

सुमत्रानन्दन पन्त कहते हैं- "कविता हमारे प्राणों का संगीत है, छन्द राग कविता का स्वभाव ही छन्द में लयमान होता है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी छन्द को साधन अर्थात अभिव्यंजना का उपकरण मानते हैं, छन्द के सूक्ष्म स्वरूप की धारणा स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं- **"अर्थमयी भाषा और संगीत के मिलने से छन्द की सृष्टि होती है। वे सामाजिक धर्म के प्रस्फुटित मंगल को छन्द का ही व्यापार मानते हैं, अपने व्यापक अर्थ में छन्द एक ध्वनि समूह है।"**[67]

इस प्रकार छन्द की सरल परिभाषा दी जा सकती है- **"प्रत्यक्षीकृत निरन्तर तरंगभंगिमा से आल्हाद के साथ भाव और अर्थ की अभिव्यंजना कर सके।"**[68]

नवगीत में छन्दों की योजना की गई है। डॉ. शंभुनाथ सिंह नवगीत में छन्दों के प्रयोग पर अपना विवेचन प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि- **"नवगीत में परम्परागत मात्रिक छन्दों को तोड़कर गेय धुनों के आधार पर नये छन्दों का निर्माण किया गया है। लोकगीतों की धुनों को अपनाया गया है और उर्दू की बहरों को भी आवश्यकतानुसार तोड़कर छोटे लयात्मक टुकड़ों में बाँटा गया है। नवगीत में लय की पंक्तियों का प्रयोग किया है। इसके विपरीत निराला, माखनलाल चतुर्वेदी और वर्तमान नवगीतकारों ने छोटी-छोटी लयात्मक पंक्तियों**

से गीतों की योजना की है। आज के जटिल जीवन में संगीत की सार्थकता बहुत अधिक है। जिस तरह संगीत में कुमार गंधर्व ने शास्त्रीय संगीत और लोकधुनों का समन्वय किया है, उसी तरह नवगीत में शास्त्रीय रागों से लोकधुनों का समन्वय दिखाई पड़ता है, आज के जटिल जीवन में ऐसा ही संगीत लोकप्रिय हो सकता है। नवगीत में ऐसा ही संगीतात्मक प्रभाव है जो आज के मानव के जीवन की जटिलता और बोझ को कम करके उसे मानसिक शान्ति प्रदान कर सकता है। गीतात्मक अनुभूति काव्यात्मक अनुभूति से भिन्न नहीं होती। साथ ही यह भी ध्यातव्य है कि गीत और संगीत दो अलग कलाएँ हैं, दोनों के समन्वय का प्रयास करना व्यर्थ है। गीत कविता है और संगीत कला है.... मैंने गीतों में प्रारंभ से ही लय सम्बन्धी नए–नए प्रयोग किये हैं किन्तु मेरे ये प्रयोग सायास नहीं है, मैं गीतों को गुनगनाकर लिखता हूँ और कोई विशेष धुन मेरी कविता की प्रथम पंक्ति का ढाँचा तैयार कर देती है, ये धुने अनुकृत नहीं होती। लोक धुनों को भी मैंने नए मोड़ देकर उनसे नई लय उत्पन्न की है।''[69]

रमेश रंजक के मतानुसार- ''शिल्पगत विशेषताओं के लिए छन्द, गति, ताल, लय आदि में नवगीत ने अपनी नव्यता को दिखाया है और कनटैंट की दृष्टि से यह अपने समसामायिक यथार्थ के दबाव को रेखांकित करता रहा है। नवगीत ने शब्दों में अभूतपूर्व प्रयोग किए हैं– पुराने शब्दों में नये अर्थ भर दिए हैं। गद्यात्मक शब्दों को लय के प्रभाव ने गीतात्मक बना दिया है। लय को तोड़ने के नए–नए प्रयोग कौशल रही है, जिनमें नवीन छन्दों का सृजन हुआ। इस प्रकार की गीत लय पहले नहीं थी, पूर्ववर्ती गीतों की लय मंत्रीयणेयता की वासी थी, जिसे नवगीत में (लय को) महारानी का स्थान मिला है।''[70]

देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' के अनुसार - ''काव्य का सम्बन्ध यदि सार्थक शब्द से है तो संगीत का अर्थातीत नाद से। लय इन दोनों कलाओं में अतिभिन्न रूप से संस्थित तत्व है। कवि उसे अपेक्षाकृत सूक्ष्म और अरूप स्तर पर व्यक्त करता है। नवगीतकार छन्द लय के क्षेत्र में अपेक्षाकृत 'निरालाजी' का आधिक ऋणी है। 'गीतिका', 'अर्चना', 'और', 'सांध्यकली' के गीतों की लयवत्ता को ही नवगीत ने आत्मसात किया है तथा उनके प्रयोगों में और अधिक नव्यतर आयामों का उद्‌घाटन किया है। 'लोक संस्कृति' और 'राष्ट्रीय

अस्मिता' को वहन करने के फलस्वरूप आज नवगीतकारों ने 'अनेकशः लोकलयों और लोकगीतों की अपनी रचनाओं में पुनःप्रतिष्ठित किया है। ठाकुर प्रसाद सिंह, शंभुनाथ सिंह, केदार, वीरेन्द्र मिश्र और अनूप अशेष के अनेक गीत प्रयोग मेरे इस कथन की संपुष्टि करते हैं। मेरे गीतों के कथ्य ने स्वयं अपने लिए एक अनुकूल लयात्मक अनुशासन का संधान किया है। मुझे उसके लिए कभी अतिरिक्त आयास नहीं करना पड़ा। कथ्य, लय और अभिव्यक्ति सदैव भुगवत रूप से कवि के सृष्टा चैतन्य में अंकुरित और आकरित होते हैं। हाँ, इसमें कोई दो मत नहीं है कि नवगीतकार को काव्य में लय की पुनःप्रतिष्ठा के लिए छायावादी कवियों की अपेक्षा अधिक उद्यम करना पड़ता है। मैं गीत या नवगीत के स्थायी प्रभाव के लिए 'गायन' को उतना महत्व नहीं देता जितना कि उसके रागात्मक संप्रेक्ष्य को देता हूँ। जीवन सन्दर्भ चाहे जटिल और संकुल हो किन्तु गीत्यात्मक अनुभूति और संगीत में एक सहज और स्वतः संभावित सद्भाना रहती है, आवश्यक है कि वह गीतानुभूति किसी वाद्ययंत्रों अभिनिवेश में ही मुखर हो, अनुभूति अभिव्यक्त का होना ही अपने आप में संगीतात्मक स्थिति है। रहस्यवादी मनीषियों और तत्व दर्शकों का शब्दातीत अनहद्नाद मध्ययुगीन वीरों के शस्त्रों की टंकार और रमणियों के नुपूरों की झंकार विद्युत परिचालित चक्रों का कर्णभेदी धूर्णनख और महानगरीय भीड़ के कोलाहल में तत्वतः कोई अन्तर नहीं है।''[71]

नवगीत ने संगीत, लय, छन्द टेक, में प्रयोग कर गीतिकाव्य के परम्परागत रूप से अलग अपना विशिष्ट चेहरा बना लिया है। आज गीतों में संगीत, लय के रूप में होता है, पुराने रूप की टेक समाप्त हो गई है वह आज पृथक, प्रक्षिप्त रूप में गीत के भावों के आवर्तन-विवर्तन से मूल बिन्दु पर पहुँचने में पुनरावृत्त होती है। टेक सूक्ष्म रूप से गीत कलेवर में विद्यमान है। अपने स्थूलरूप में वह अस्तित्वहीन हो चुकी है। नयी कविता के प्रतिष्ठित कवि भी नई-नई छन्द रचना के हिमायती बने। तारसप्तक कवि प्रभाकर माचवे की यह कामना तथ्य की पुष्टि करती है- **''छन्दों की रचना के विषय में हमें नव-नवीन प्रयोग अपनाने होंगे। अन्य भाषाओं के छन्द भी हम लें। निराला द्वारा हिन्दी में लायी गयी मुक्त विषय चरणावर्तिनी, अनुकान्त, अक्षर-मात्रिक, छन्द पर आधारित तालात्मक पद्य रचना पद्धति श्रेयश्कर है। उसमें भावों के**

उतार चढ़ाव के अनुकूल गति के परिवर्तित होते रहने की संभावना यदि हो सके और गेयता अधिक तथा गद्यात्मकता कम आ सके तो और अच्छा। अन्तर्गत प्रास–योजना सहज हो, वह शब्दनिष्ठ न होकर अर्थ निष्ठ हो।''[72]

आज गीतियों में छन्दानुसार मात्रा आदि और पंक्तिगठन पर विशेष बल नहीं दिया जाता। एक वाक्य छोटा, तो दूसरा बड़ा। अनेक विरामों के साथ उसमें नव लय की स्थिति के बोधक स्थल प्राप्त होते हैं। कविता की अन्य विधाओं से अधिक नवगीत अपने छान्दसिक स्वरूप में ही अभिव्यक्ति का सामर्थ्य प्रस्तुत कर चुका है। **''वह संगीत, छन्द, लय, तुक और ताल की समस्त पारम्परिक रूढ़ियों से मुक्त होता हुआ भी उसकी मूल धारा से जुड़ा वह एक ऐसा काव्यरूप है जो वास्तविक रचना के आन्तरिक अनुशासन से अनुशासित है।''**[73] लिहाजा नवगीत में संगीत या लय उतनी ही जरुरी है जितनी कविता के भाव की उत्कंठता के लिए जरूरी है।

उमाशंकर तिवारी जी अपना मंतव्य व्यक्त करते हुए कहते हैं - **''मैं लय और छन्द को गीत की अनिवार्यता मानता हूँ। वैसे विषयवस्तु की जटिलता को ध्यान में रखकर अर्थ की लय भी स्वीकारी जा सकती है। उसी प्रकार छन्दानुशासन से अलग नए छन्दों के आविष्कार भी किये जा सकते हैं।''**[74] नवगीत में इस तरह के नये प्रयोग किये भी गये हैं। अपनी रचनात्मक मात्रा में हिन्दी काव्य को मिट्टी की सौंधी सुगन्ध और सर्वथा नई संगीतात्मकता दी है।

मुक्त छन्दयुक्त नवगीत अपने आप में पूर्ण ईकाई होता है। इसमें स्वर ध्वनियों से अन्तर संगीत पैदा किया जाता है। व्यंजन ध्वनियों का संगीत आकार का संगीत कहा जाता है। आज गीत न तो तुकों पर निर्भर है, न टेक और न किसी बंधी बंधाई लीक पर। छन्दों का नवीन रूप गीतों में सौन्दर्य भरता है। आचार्य शुक्ल के मतानुसार - **''छन्द का बन्धन काव्य का अनिवार्यतम् तत्व है जिसके अपनाये रहने में ही अनुभूत नाद सौन्दर्य की प्रेषणीयता सुरक्षित रह सकती है। निःसन्देह नये–नये छन्दों के विधान को वे स्वरूप चेष्टा मानते हैं।''**[75]

नवगीत में छन्द, लय और अनुभूति के संबंधों को पूर्ण रूप में निष्क्राषित करते हुए श्री शंभुनाथ सिंह एवं सोमठाकुर आदि कहते हैं - **"जिन्दगी में जो भी लय है वह सब नवगीत में है।"76** नवगीत के लोकतत्व ने आधुनिक हिन्दी कविता को विजातीय होने से बचाया है। **"नवगीत में आयातीत, अनपची मनःस्थितियों की अपेक्षा अनुभूत यथार्थ के 'स्व' और 'पर' परक आयाम, छन्दानुशासित मुक्त लय संधान द्वारा उजागर हुए है।"**[77]

नवगीत ने **"ट्रामों, बसों, ट्रेनो और स्कूटर के घर्घर नाद को स्वायत करते हुए उसने अपने आपको एक नई संगीतात्मक अस्मिता प्रदान की है। यह सच है कि आज का गीत गतानुगंतिक छन्दों की जकड़बन्दी के प्रति अवज्ञा का भाव रखता है, तथापि उसे नई कविता की छन्द-विच्छिन्न लय हीनता से परहेज रहा है। नवगीत में जो संगीत की अंतः सलिला प्रवाहित हुई है वह सम्मेलनी श्रोताओं के कर्ण कुहरों से मादक छेड़खानी करके ही चुप नहीं हो जाती, अपने गंभीर और मर्मज्ञ पाठकों के अंतर्जगत तक उसके सार्थक स्वर झंकृतियाँ भी निनादित होती हैं। मेरी अपनी दृष्टि में परम्परागत गीत की भांति नवगीत एक निरा 'आरोह-अवरोहपूर्व स्वर पर्व ही नहीं है वरन् एक अर्थवती उपलब्धि भी है। नवगीत को मैं सुबुद्ध भावों के नेत्रोंका 'कौमुदी महोत्सव' मानता हूँ जिसका वर्ण-अपने आप में एक चित्र, एक गन्ध है और एक प्राणवाही रंगमयी उष्मा है।"**[78]

नवगीत की इन पंक्तियों में बदलती हुई परिस्थितियों में मध्यमवर्गीय परिवार की सहज छाव उतारी गई है। सांगितिक उपकरणों की उपमा से सज्जित वर्ण संयोजन में विशिष्ट छन्दसिक लय है। वक्त की थाप पर तबले जैसा कवि का बज उठना इस पंक्ति ने गीत की लय और अर्थ में नये सौन्दर्य की सृष्टि की गई है। सरल शब्दों का प्रयोग करके उन्हें गम्भीर अर्थवहन में सक्षम बनाया गया है, पूरे गीत में नाद सौन्दर्य है, लय का नव-स्पन्दन है।

नवगीत का प्रमुख तत्व है आंचलिकता इससे छन्द विधान प्रभावित हुआ है, लोक धुनों का इन पर व्यापक प्रभाव पड़ा, 'वंशी और मादल' का सभी छन्द विधान लोकाश्रयी धुनों से युक्त है। बुद्धिनाथ मिश्र, नईम, अनूप अशेष, शंभुनाथ सिंह आदि के गीतों में भी यह प्रवृत्ति प्राप्य है।

''खुद से ही टूटा संवाद
स्वप्न हुए जबसे नीलाम
जीभ में दिशाओं के
उगती है नागफनी
जीवन को जैसे
डसने की तैयारी
नेह सने मौसम का
जाने अब क्या होगा।''[79]

जीवन के यथार्थ से सीधे जुड़ने के कारण नवगीत में यथार्थोद्भासक बिम्बों का प्रयोग अधिसंख्य, सार्थक और सटीक हुआ है। प्रारम्भ के नवगीतों में इनकी संख्या सीमित रही, परन्तु जैसे-जैसे नवगीत का जुड़ाव वर्तमान की विसंगतियों, विकृतियों और चिन्ताओं से बढ़ता गया, वैसे वैसे उसकी भाषिक संरचना भी अधिक यथार्थ ग्राही होती गई। आज आसुरी सम्पदा के दबाव, देवी आस्थाओं और आश्वस्ति देती परम्पराओं के अस्वीकार और एक आशय मुक्त दिशाहीन पदार्थिक दृष्टि के अन्तर्गत जो एक संवेदन शून्य आपाधापी भरी जीवन प्रणाली पनपी है, उसने मनुष्य होने के सारे संदर्भ ही बदल दिये हैं। महानगरों के यातना-शिबिर होते परिवेश, ग्राम्य जीवन के निरर्थक और असमर्थ होते संदर्भो, घर और दफ़्तर के बीच लटकी त्रिशंकु जिजीविषा, घर-आँगन की बिखरती आस्थाओं, निस्पंद होती मानुषी आस्तिकताओं, सम्बन्धों की, पंखकटी मेहराबों आदि का चित्रण नवगीत की बिम्बात्मक भाषा में बड़ी शिद्दत से हुआ है। यथा-

''लाँघकर देहरी घरों तक
आ गई है दूरदर्शन पर
प्रदूषित मंथराएँ
छीन ली आकाश चुम्बी होटलों ने
द्वार से पीपल पिता की
भूमि सारी।''[80]

"वर्तमान में मुझे दिया है, यह सूखा मंजर
वे सब आये हैं भविष्य से आंतकित होकर
सूखे होंठ, झूलते कंधे, बोझ किताबों के
एक सदी जकड़े पावों को, एक सदी सर पर
शहरों के हिंसक जंगल में, सूखे सागर में
रोटी मुझे खींच लाई है, इस जलते घर में।"[81]

* * *

"हर छत है नंगी चोटी
चट्टानों सी हर दीवार
हर कमरा बंद गुफा है
हर दरवाजा कटा पहाड़
हर आँगन की घाटी में
खुशियाँ हैं क्रास पर तुली
जीवन ज्यों दरवाजे के
पल्लो में दबी उंगली।"[82]

नवगीत में शिल्प संबंधी प्रयोग के बारे में शंभुनाथ सिंह अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहते हैं- **"नवगीत अनुशासित लयात्मकता और नाद योजना को भारतीय काव्य परम्परा के रूप में स्वीकार करता है और यह मानता है कि भौतिक जगत में जिस तरह लयात्मक स्पन्दन का होना अनिर्वाय है, वह स्पन्दनशील नादतत्व ही कविता को शेष सृष्टि के साथ जोड़कर उसे असीम जीवनी शक्ति प्रदान करता है। यों तो गीत मात्र का अस्तित्व लय अथवा नाद योजना पर आधारित है। परन्तु नवगीत की विशेषता यह है कि खोज और उपलब्धि की गई है। वह लयात्मकता की पूर्व ज्ञात सीमाओं को अतिक्रमित करके छंद सागर की नवीन और अछूती लहरों को पकड़ने में सफल सिद्ध हुआ है। उसने बदली हुई युगीन परिस्थितियों के लयात्मक स्पंदन को पकड़कर उसे अपनी काव्याभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। इस तरह उसमें समकालीन युग-जीवन के स्पंदन और संवेग का संगीत सुनाई**

पड़ता है। यही संगीत नवगीत की छंदासिक लयात्मकता है जो नई कविता में तो है ही नहीं, पारम्परिक गीत काव्य के लिए भी अपरिचित है।''[83]

''बेल धूप की
सूख चली है
दिन है टूटे गमले जैसा
टूटे हुए तानपूरे से
धूल-धूसरित वीणा जैसी
खड़ी हुई कोने में अम्मा
झूले पर उदास बैठी है
बांसुरिया सी प्यारी बहना
नित्य पूजती तुलसी चोरा
देती मंदिर की परिक्रमा
थाप वक्त की पड़ती है
मैं बज उठता तबले जैसा।''[84]

* * *

''ऊँचा उठा
बबूलों का स्वर
उतरी नील गगन से चीलें।
नदियाँ अब
उस और मुड़ी हैं
लौट बस्तियाँ जहाँ खड़ी है
तन पर लिये नुकीली कीलें।''[85]

डॉ. विष्णु विराट भी ऐसे ही मुहावरेदार भाषा की वानगी अपने नवगीतों में देते हैं-

''देह में जमने लगी

बहती नदी है

सांस लेने में लगी पूरी सदी है

चेतना पर धुंध छाई है

माँ तुम्हारी याद आयी है।''[86]

या फिर ....

''हम से मत पूछिए

हमारे कैसे जिये पिता

बूंद बूंद से भरा किये घट

खुद खाली होकर

काँटे काँटे जिये स्वयं/हमको गुलाब बोकर

हमें भगीरथ बन गंगा की लहरें सोंप गये

खुद अगत्स्य बन

सागर भर भर आँसू पिये पिता।''[87]

नवगीत का सीधा सरोकार हिन्दी की विभिन्न लोकबोलियों से है -

''आटे बाटे

दही चटाके

पटवारी ने कहा पटाके

काना बाती फुस-फुस फुस

तू भी खुश भाई

मैं भी खुश।''[88]

या फिर .....

''मेरे गाँव की कहानी

मोकूं याद है जवानी

दादी उठे भोर भिन्सारे

मंतर बड़े-बड़े उचारे

सब को जथा जोग कहि रामा

मन में चैन करे विसरामा।''[89]

आंचलिक भाषा संस्कार यों तो सभी नवगीतकारों का वैशिष्ट्य है किन्तु अनूप अशेष व ठाकुर प्रसाद सिंह के गीतों में यह बात विशेष तौर पर देखी जा सकती है। अनूप अशेष के नवगीत की निम्न पंक्तियों में लोक-लय एवं आंचलिकता की महक आसपास की हवाओं में बिखरती महसूस की जा सकती है -

''धनिया के तवे की आँच बनूं मैं

आँच बनूं, रोटी का साँच बनूं मैं।

गंगा माई दे दे कुटिला भर गेहूँ

ताल की मछलियों से एक-एक रोहू,

मिट्टी की दोहनी का खाँच बनूं मैं।''[90]

बुंदेली अंचल के रचनाकार श्यामसुन्दर दुबे की ये नवगीत पंक्तियाँ ग्राम्य संस्कृति का संपूर्ण चित्र उपस्थित करती हैं-

''बड़ों की अनारी करे

दर्द सों चिन्हारी

मेह बरसे जलभारी

तऊ प्यासो, पपीहरा

पात-पात बूंद झरे

झिल्ली झन्कार करे

आधीरात चिहुंक उठे

गाँठ-गाँठ पीरा

खोल संयम की

सांकल पुरवैया हरी

उचट उचट जाय नींद

अधखुली किंबरिया।''[91]

नईम, ओमप्रभाकर, गुलाबसिंह,देवेन्द्र कुमार, अनूप अशेष, माहेश्वर तिवारी, विष्णुविराट आदि ने अपने गीतों में ग्रामीण चेतना के स्वर को तो उजागर किया ही है साथ ही साथ गीतों में यातनाओं, रूढ़ियों, विडम्बनाओं, एवं संज्ञाओं के प्रति गहरा विक्षोभ भी प्रस्तुत किया है-

''फूले हुए पलाशों में
जीवन के काव्य तलाशें
लहूलुहान खरी जंगल में
वही पुरानी लाशें
चीरघरों में हत्याओं के
कारण खोज रहे
मांशपेशियों में खरोंच
आँखों में भरी खुमारी
मंहगे कपड़ों के नंगेपन
में ऊँची लाचारी
तालीमों के ये तिलिस्म
गर्दनें दबोच रहे।''[92]

लोकोक्ति पूर्ण एवं मुहावरेदार भाषा के संबंध में नीलम श्रीवास्तव का यह कथन उल्लेखनीय है -

''मुहावरा और लोकोक्तियाँ लोकानुभव की 'कोड' भाषा है, संप्रेषण का यह सरल और सबल माध्यम है। लोक-स्मृति में इसका अभिप्राय पूर्व संचित होता है, इसलिए इसके माध्यम से इस बात को समझना सरल हो जाता है।''[93]

सोमठाकुर ने मुहावरों का प्रयोग नये संदर्भ में बहुत ही कुशलता के साथ किया है, आज की आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक रीतियों नीतियों की विसंगतियों का उद्घाटन

ही उनके गीतों का मुख्य कथ्य है -

''आ गए किस द्वीप में हम
देह पत्थर हो गई।
सर्प गंधा एक डाकिन
साथ में फिरने लगी।
नाम लिख आये जहाँ हम
गुनगुनाती खुशबुओं से,
ढह गये वे बुर्ज
कुछ टूटे कंगूरे रह गए।
बढ़ चले हैं पाँव,
पीछे को बुलाती सीढ़ियों पर
हो गए पूरे कथानक
हम अधूरे रह गए।''[94]

गीतकार शीलेन्द्र सिंह ने अपनी रचनाओ में अनगिनत लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग सहजता के साथ किया है। मुहावरों और लोकोक्तियों के सार्थक एवं समुचित प्रयोग से उन्होंने अपनी गीत भाषा को एक अलग तरह की शैली दी है। उन्होंने अपने गीतों में समकालीन अनुभवों और वर्तमान परिदृश्यों के बयान में तमाम मुहावरों का प्रयोग कर नवगीत की भाषा को एक नई आभा दी है-

''तपती एंव उबलता पानी
नदिया की कितनी मनमानी
चली जा रही धीरे-धीरे
पीर पराई से अनजानी।
लहर-लहर में मगर बसे हैं,
धार-धार रेतीले टीले
शार्क मछलियों के तन पर हैं

उगे हुए कांटे जहरीले
बंधी हुई किश्तियाँ तटों पर
दूर तलक फैली वीरानी।
घाट–घाट विषकुण्ड हुआ है
पाट–पाट भँवरों का नर्तन
उन्मादित कछुवे उतराये
दहल गया सीपों का तनमन,
इस रेती से उस रेती तक
कण–कण में फैली हैरानी।''[95]

गीतकार दिनेशसिंह ने अपने गीतों में देश रंग की शब्दावली का बड़ा ही सुन्दर प्रयोग किया है, आंचलिक शब्द परिधान द्वारा गीत को एक नया ही रूप दिया है-

''पहिने लाग बहार ताल झांके बँसवारी
छिन बदरी, छिन धूप, पात आँखों के पीते
चुप ! चुप कहे बयार उमर अपनी सब जीते
टूटा गन्ध सितार, कसे फूलों की क्यारी
कजली गाये मोर, खड़े सर 'विरिह' हिलाये
बरगद ताने डोर, हवा में बाँह झुलाये।''[96]

डॉ. शांतिसुमन ने इसी तरह देश रंग की शब्दालियों से सरोबार इन गीत पंक्तियों में व्यक्तिगत संवेदना को समष्टिगत विस्तार प्रदान किया है -

''माँ की परछाई–सी लगती
गोरी–दुबली शाम
पिता सरीखे दिन के माथे
चूने लगता घाम
दरवाजे के सांकल
छाप उंगलियों की गठरी

भुनी हुई सूजी की मीठी
गंध लिखी देहरी
याद बहुत आते हैं घर के
परिचय और प्रणाम
उजले-पीले-कई-कई
सन्दर्भ सलोने से
तुतली जिद पर गुस्से लगते
काँच खिलौने के
नुपूर पहन बहन का हंसना
फिरना सारा गाम
कहीं-कहीं दुखती है
घर की छोटी आमदनी
धुँआँ पहनते चौके
बुनते केवल नागफनी
मिट्टी के प्याले सी दरकी
उमर हुई गुमनाम।''[97]

भारतीय मध्यम वर्ग और श्रमरत किसान, मजदूर नवगीत संवेदना के मूल आधार हैं, गाँव, नगर, कस्बा एवं महानगरों में रहने वाली पारिवारिक इकाईयां, उनका दुःख-दर्द, सुख-उल्लास आदि की अभिव्यक्ति नवगीत का प्राप्य है, भारतीय काव्य में जन-भाषा का सर्वाधिक रचनात्मक उपयोग अपने श्रेष्ठ रूप में 'नवगीत' में वर्तमान है। डॉ. सत्येन्द्र शर्मा संभवतः सत्य ही कहते हैं- **नवगीत में भाषा की हार्दिकता रचनाकार के व्यक्तित्व के सामाजिक विलयन से जन्मी है, जबकि नई कविता में 'अहं' कहीं तिरोहित ही नहीं होता, वह सिर चढ़कर बोलता है।''[98]**

नयी कविता में रागात्मक गेयता मरुस्थल में यदा कदा मिली आर्द्रता की भांति है, जहाँ मिलते हैं लम्बे लम्बे वक्तव्य, उक्ति-वैचित्य अथवा उत्तेजक भाषण के अंश उसकी तुलना

में नवगीत में वाणी का संयम मिलता है, वाणी का संयम रचना को वक्तव्य होने से बचाता है।

भाषा :-

नवगीत को भाषा की नयी सभ्यता मानते हुए डॉ. विजय बहादुर सिंह लिखते हैं- ''भाषा की यह नई सभ्यता बुद्धि या प्रयासजन्य नहीं है, वह व्यापक जन-संवेदना और सामाजिक धरातल से प्रादुर्भूत हुई है। काव्य परम्परा में इसके बीज 'निराला' व विशेषकर पंडित माखनलाल चतुर्वेदी में मिलते हैं। जहाँ अभिव्यक्ति या संवेदना को सर्वोपरि मानकर संस्कृत शब्दों के बीच भी लोक शब्दावली प्रयुक्त हुई है और वह पाठक की आत्मा को रस-स्नात कर गई है।''[99]

भाषा के स्तर पर भी नवगीत पूर्णवर्ती कविता या गीत से बहुत कुछ अलग दिखता है। नवगीत के कवि अंचलों से आये हैं और उनकी भाषा में लोकभाषा के शब्दों का प्रयोग अधिक से अधिक हुआ है जो नवगीत को नवीनता प्रदान करता है। डॉ. ओमप्रभाकर में बुंदेलखण्ड, नईम में मालवा, विष्णुविराट, सोमठाकुर, रमेश रंजक में ब्रज, गुलाबसिंह, उमाशंकर तिवारी में भोजपुरी, अनूप अशेष में बघेली से पिरोये शब्द नवगीत की भाषा को नया अर्थ देते हैं। नवगीत की भाषा के सम्बन्ध में डॉ. विजय कुमार सिंह ने लिखा है- **''नवगीत कवि यदि सचमुच नवगीत लिख पाता है तो उसके मूल में यही एक प्रकट रहस्य है कि उसकी भाषा विगत समस्त कविता आन्दोलनों से पृथक और काव्योचित है।''**[100]

नई कविता के रचनाकारों ने वैयक्तिक और विलक्षण काव्य-भाषा को जन्म दिया। अतः वहाँ सम्प्रेषणीयता की समस्या पर कई दिशाओं से विचार किया गया; किन्तु नवगीत की भाषा के साथ इस प्रकार की कोई असंगति नहीं थी। उन्होंने भाषा को गढ़ने और विलक्षणता प्रदान करने के बदले उसका अन्वेषण किया और अन्वेषण के साथ ही उसकी पूर्ण रचना में संलग्न हो गये। भाषा का यह अन्वेषण सम्पूर्ण भारतीय परिवेश को एक इकाई मानकर किया। इसलिए नवगीतों की भाषा में लोक बोलियों के शब्दों से लेकर आधुनिक नागरिक सभ्यता की शब्दावलियाँ तक मिलती हैं।

शंभुनाथ सिंह ने अपने नवगीतों में युग के वैज्ञानिक बोध को चित्रित करनेवाले शब्दों

का जो प्रयोग किया है, वह उनकी सजग आधुनिक वृत्ति का ही परिचायक है-

''माथे के ऊपर बहती
रांगे की धारा-सी शाम।
जादू के कजरी वन में
भटक गया है कोई यान
पहियें में उलझ गये हैं
सदियों के विस्तृत मैदान
चीवर-सा उड़ता आकाश
बलिवेदी धरती नादान।
रेत के घरोदे सुनसान
लगते हैं नगर और ग्राम।''[101]

माहेश्वर तिवारी ने चिल्हकती उदासी, उदास पंक्तियाँ गुमसुम सन्देह, मछुआरी किरनें, पीली चिट्ठियाँ, नाव के इरादे, छुवन, सबूत, आहट जैसे शब्दों के माध्यम से सहज भाषा के विशिष्ट प्रयोग का उदहारण प्रस्तुत किया है -

''कुहरे में
सोये हैं पेड़
पत्ता-पत्ता नम है
यह सबूत क्या कम है
लगता है
लिपट कर टहनियों से
बहुत-बहुत
रोये हैं पेड़
जंगल का घर छूटा
कुछ-कुछ भीतर टूटा

शहरों में

बेघर होकर जीते

सपनों में खोये हैं पेड़।''[102]

इसके साथ ही गीतों में विशेषणों के प्रयोग से एक अर्थवान शिल्प तत्व का निर्माण भी हुआ है। इनके गीतों में हवा, बादल, नदी, पेड़ व चिड़ियों के प्रतीकों की अधिकता कवि के व्यक्तित्व को उद्घाटित करती है।

''आसपास जंगली हवाएँ हैं,

मैं हूँ,

पोर-पोर जलती समिधाएँ हैं,

मैं हूँ।

आड़े-तिरछे लगाव,

बनते जाते स्वभाव

सिर धुनती

होंठ की ऋचाएँ हैं

मैं हूँ।''[103]

अनूप अशेष ने मूंज, चिरइया, अम्मा, गौरैया, गिरस्थी, कोदब, कुटक, सुगनामन, दूध-भात-दाल, पत्तल, करताल, महुए की गन्ध, ताल-तलैया, खर-पतवार, गोरख-धन्धा जैसे शब्दों का अधिकाधिक प्रयोग कर अपने आपको ग्राम-संस्कृति का गीतकार होने का प्रमाण दिया है -

''ताल-तलैया लिये जीवनी गंगा

धान-सा पका किसान

गेहूँ सा

कटा किसान।

दो खेपों में खपता उड़ता

जैसे खर पतवार
पूरी बारिश
धूप ओढ़कर
करे नौका पार
अगला साल आँख में भरकर
घर में
खटा किसान।''[104]

नवगीत की भाषा भी नयी कविता भी भाषा की तरह ध्वनि-प्रधान है। इसमें लोक के शब्द, लोकबिम्ब और लोक-प्रतीक अधिक हैं। नवगीत में मिथक अपेक्षतया कम है। यहाँ क्रियापदों से अधिक विशेषण हैं, इसलिए इन्द्रिय संवेदनाओं को व्यक्त करने में इसकी भाषा बहुत सफल है। सहज भाषा की कसी हुई बुनावट में दूसरी पीढ़ी के गीतकार अधिक सफल हुए हैं। प्रतीक और मुहावरेदार भाषा को संकेत से भरे देते हैं। संज्ञापदों के प्रयोग का विश्लेषण किया जाये तो नई कविता से कम नई वस्तुओं का परिचय नवगीत ने नहीं कराया है। नवगीत का वस्तुबोध नयी कविता से कम नहीं है, जिन रचनाकारों की भाषा व्यंजक नहीं थी, वे अधिक नहीं चल पाये।

नवगीत की भाषा सामान्यतः एक रचनात्मक ऊर्जा से दीप्त है। डॉ. शंभुनाथ सिंह ने नवगीत के भाषागत वैशिष्ट्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है- **''नवगीत की भाषिक संरचना अपनी सहजता, अकृत्रिमता और लोकोन्मुखता के कारण नयी कविता की अभिजात संस्कारों वाली भाषा तथा पारम्परिक गीतों की गलदश्रु भावुकता वाली काव्य-भाषा से नितान्त भिन्न और विशिष्ट है। वह लोकश्रित भाषा है जिसमें आंचलिक बोलियों के शब्दों एवम् मुहावरों का निःसंकोच प्रयोग हुआ है, किन्तु लोकभाषा से जुड़ी होकर भी अर्थवत्ता की अनन्त संभावनाओं से युक्त है।''[105]**

नवगीत की भाषा में देशज शब्दों का अधिक से अधिक प्रयोग हुआ है। लोकभाषा का पुट पाठक या श्रोता से आत्मीय संवाद स्थापित कर उससे बतियाता हुआ अपना गहरा प्रभाव उस पर छोड़ता है। नवगीत के देशज रंग ने उसे खड़ी बोली के ठेठपन से बचाकर कोमलता

व सहज लोच के गुणों से अभिसिक्त किया है। इसका आशय यह हरगिज नहीं कि, नवगीत की भाषिक संरचना आंचलिक शब्दावलियों या फिर विभिन्न बोलियों से हुई है। बल्कि वहाँ परिनिष्ठित खड़ीबोली में आंचलिक शब्द विन्यास अथवा बोली का प्रयोग है। यह प्रयोग सचेष्ट और श्रमसाध्य भी नहीं है, ऐसा होने पर नवगीत में कृत्रिम अभिव्यक्ति की खोट आ जाती है और उसमें प्रयुक्त आंचलिक शब्दावली मात्र भाषा वैज्ञानिक अध्ययन का आधार बनती। वस्तुतः नवगीत में बोलियों की साझेदारी कुछ इस सहजता से हुई है कि सम्पूर्ण शब्द विन्यास कथ्य की स्वाभावोक्ति पा जाता है। निःसन्देह, सहज, स्वाभाविक तथा दैनिक जीवन में प्रयुक्त शब्दावली और कहने का ढंग जितना देशीय संस्कारों से युक्त होगा, उतना ही सजीव, प्रभावकारी व मर्मस्पर्शी होगा।

नवगीत में छानी-छप्पर, चूल्हा-चक्की, खर-पतवार, अगवारे-पिछवारे, मड़ई-खपरैल, खटिया-मचिया, देहरी-द्वारे, भिनसार, चिकोटी, अलगनी, ढिबरी, अबेर, चिरौरी, चुनमुन, पोखर, ताल आदि लोक शब्दावली के बहुविध प्रयोग में ही उसके लोकभाषा सम्पृक्त सौन्दर्य को नहीं समझा जा सकता, बल्कि लोकोक्तियों, मुहावरों और कथन के लोक-विन्यास नवगीत की लोक भंगिमा प्रदान करते हैं। इसलिए कई बार आंचलिक शब्दावली के अत्यल्प प्रयोग होने के बावजूद भी कथन शैली के कारण लोक भंगिमा का स्वरूप दर्शनीय होता है-

''भीलों ने बांट लिए वन !
राजा को खबर तक नहीं !
पाप चढ़ा राजा के सिर
दूध की नदी हुई जहर
गाँव नगर धूप की तरह
फैल गई यह नई खबर
रानी हो गई बदचलन,
राजा को खबर तक नहीं।
एक रात कालदेवता
परजा को स्वप्न दे गये

राजमहल खण्डहर हुआ
छत्रमुकुट चोर ले गये
सिंहासन का हुआ हरन
राजा को खबर तक नहीं।''[106]

इस संदर्भ में राहुल सांकृत्यायन ने ठीक ही कहा है- **''भाषा निर्जीव, यांत्रिक तौर से या सीधे तर्जुमा वाले शब्दों के द्वारा हमारे भावों को प्रकट करने में समर्थ नहीं होती.. भावों को ये वाक्य ज्यादा व्यक्त कर सकते हैं जो अपने शब्दार्थो से दूर-दूर तक ध्वनित करते हो। यह सामार्थ्य भाषा में तभी आती है जब उसमें निर्जीव शब्दावलियों की जगह सजीव मुहावरे वाले वाक्य लाये जाएँ।''**[107]

भाषा की दृष्टि से कुछ उदाहरणों के माध्यम से यहाँ मुहावरों के प्रयोग की बात स्पष्ट करना चाहूँगी। नईम ऐसे नवगीत हस्ताक्षर हैं, जिन्होंने नवगीत की भाषा को मुहावरेदार बनाने में संभवतः सर्वाधिक योगदान दिया है। उनके गीतों में अनुभूति इसी कारण इतनी सहज अभिव्यक्ति हो सकी है -

''साँझ हैं, सकारे हैं
अंधों की लाठी में
जन्म के सहारे हैं
जुग जुग सदियों से हरकारे हैं काल के !
आने पर राम-राम
जाते सूरज को भी
करते है जन सलाम
लैम्पपोष्ट से अब भी गलियों के, चाल के।''[108]

या फिर.....

''शामवाली डाक से खत
आज आया प्यार का।

यह सुबह, वह शाम
कटते कट गये बीसों बरस
आज अपने आप पर
आया मुझे बेहद तरस
क्या कभी होगा हरा फिर,
ठूंठ यह कचनार का?''[109]

यश मालवीय की निम्नांकित पंक्तियों में मुहावरों का सुन्दर सार्थक प्रयोग हुआ है -

''बर्फ का साम्राज्य फैला है
रास्ता कोई नहीं है
यह व्यवस्था,
दूध की धोयी नहीं है
कांपते हैं होंठ
कुहरा काँपता है
एक सन्नाटा
दिशाएँ नापता हैं
कौन सी है आश
जो खोई नहीं है?''[110]

डॉ. प्रभासिन्धु ने भी अपने नवगीत में मुहावरों और लोकोक्तियों का यथास्थान प्रयोग किया है, मुहावरे के प्रयोग से उनके गीत अत्यधिक सुन्दर एवं संवेदनशील बन पड़े हैं-

''मूक रही अधरों की झीलें !
घना हुआ
पेड़ों पर पतझर
ऊँचा उठा
बबूलों का स्वर
उतरी नील गगन से चीलें !

नदियाँ अब

उस ओर मुड़ी हैं

लौह बस्तियाँ

जहाँ खड़ी हैं

तन पर लिये नुकीली कीलें।''[111]

सांस्कृतिक रेखांकन तो प्रायः अधिकांश नवगीतकारों ने किया है। वस्तु के अनुरूप शब्दावली रचने वालों में उमाकान्त मालवीय सर्वाधिक उल्लेखनीय हैं। जिनके नवगीत का समवेत स्वर तदनुरूप शब्दावली में जातीय स्मृतियों और संस्कृति के मानदण्डों का सन्तृप्त मुखर लोक है-

''दिन-दिन अंगिया छोटी पड़ती

गदराये तरूणाई

पोर-पोर चटखे मादकता

लहराये अंगड़ाई

दोनों तट पर प्रियतम शान्तनु की फेर रही दो बहियाँ

छूट गया मायका बपा का, बाबुल की अगननाइयां

भूखा कहीं देवव्रत टेरे

दूध भरी है छाती,

दौड़ पड़ी ममता की मारी

तजकर संग-संघाती

गंगा नित्य रंभाती फिरती जैसे कपिला गइया,

सारा देश क्षुधातुर बेटा, वत्सल गंगा मइया।''[112]

नवगीत में जहाँ तक सांस्कृतिक परिदृश्यों के उभारने का प्रश्न है, वहाँ मुख्यतः नवगीत कवियों ने परम्परित उन सांस्कृतिक धरोहरों को बार-बार उकेरने का प्रयत्न किया है, जो या तो आंचलिक परिवेश में प्रचलित हैं अथवा जिनके भग्नावशेष नगरीय सभ्यता में संक्षिप्त रूप से विद्यमान हैं। संस्कृति का लोकाभिमुख रूप अधिकतर सामाजिक संस्कारों से जुड़ा हुआ

है। नवगीतकार विशेष तौर पर हिन्दू-संस्कृति का ही पक्षधर या चितेरा रहा है। वामन, मोची, भंगी, चमार, बनिया, पुजारी, पंडा, मठाधीश जैसे शब्द हिन्दू संस्कृति को ही रेखांकित करते हैं, इनमें मौलनी हाफ़िज, मुल्ला, काजी, जुलाहा, नमाजी, काफिर जैसे शब्दों को अधिक स्पर्श नहीं किया गया है। इसका मुख्य कारण है- गीतकारों का एक मान्य चौखटे ये निबद्ध रहना। जहाँ विषय व कथ्य में नवीनता है, छन्द में मौलिकता है, किन्तु सांस्कृतिक परिवेश का सांकीर्ण्य एक योजना बद्ध रूप से स्वीकार होता रहा है। अब ये कहना तो बेईमानी होगी कि नवगीतकारों में प्रमुख हस्ताक्षर हिन्दू संस्कृति का व्यापक और प्रत्यक्ष अभाव इन नवगीतों पर पड़ा है, क्योंकि अनेक मुस्लिम सशक्त नवगीत हस्ताक्षरों ने इस क्षेत्र में अपनी प्रभावक भूमिका प्रदान की है जैसे-बिदियां, मेंहदी, माँग, सिन्दूर, बिछुआ करधनी, मंगलसूत्र, पहुँची, बाजूबन्द बेना, अंगिया, फरिया, जैसे अनेक साज सज्जा और प्रसाधन के नाम नवगीतों में जुड़े हैं, जो विशेष रूप से हिन्दू संस्कृति के प्रतीक हैं। किसन सरोज लिखते हैं -

''धर गये मेंहदी रचे दो हाथ
जल में दीप
जन्म -जन्मों ताल सा हिलता रहा मन
बाँचते हम रह गये अन्तर्कथा
स्वर्णकेशा गीत-बंधुओं की व्यथा
ले गया चुनकर कमल
कोई हटी युवराज
देर तक शैवाल सा हिलता रहा मन।''[113]

प्रेम तिवारी के नवगीतों में भी ऐसे दृश्य दिखाई देते हैं -

''जागे-जागे
सपने भागे
आँचल भर बरसात।
मैं होती हूँ
तुम होते हो

सारी सारी रात।

हल्दी के

सपने आते हैं

ननदी को दिन-रैन

हमें पता है

सोलह में

मन होता है बेचैन,

कोई अच्छा सा घर देखो

ले आओ बारात।''[114]

नवगीतकार को उसका संस्कार उसे गाँवों की ओर खींचकर ले गया है। इनमें ग्राम्य संस्कृति से सम्पृक्त ऐसी शब्दावली है जो अधिकांश नवगीतों में देखी जा सकती है। खेत-खलिहान, चूल्हा-चौका, बाड़ा-चौपाल, बाखर, जमीनदार, ठाकुर, पटवारी, पगदण्डी, टपरा, कुँआ, जगत, पोखरा, नीम, बरगद, पीपल, इमली, चबूतरा, गाय-बैल, भैंस-बकरी, कुत्ता, घोड़ा, गधा, सूअर, टेसू, बेहया, छुईमुई, कनेर, गुलाब, गुड़हल, चम्पा, जूही, केतकी, खादर, खांई, बंसवारी, बगीचा, बटवारा, देवर-भाभी, ननद-भौजाई, जेठ, मेहरारू, चाची, भाभी, ताऊ, दद्दा काका, दादी, बाबा, फूका, मामा-मामी, अम्मा, देवर, साहूकार, दुश्मन, तेली, हिस्सा, चक्की, चकबन्दी, उज्ञर-बाजर, उपजाऊँ, ईख, धान, गेहूँ, सरसों, तीसी, मटर, तरकारी, रोटी, भात-दाल, पाला, ठंडी-गरमी आदि अनगिनत शब्द हैं जो खासकर ग्रामीण संस्कृति को गीतांकित करने में प्रमुख भूमिका का निर्वाह करते हैं, इस सन्दर्भ में कुछ नवगीत दृष्टव्य हैं -

''कई दिनों के बाद

आज फिर सूरज निकला है,

केश सुखाती वस्तु बदलकर

ओस नहायी दूब

ठण्डा कुहरा उतर शिखर से

गया ताल में डूब
शंखमुखी अजगर में
चुप्पी का वन निगला है।
किरनें कात रही मेघों की
रोवेदार रूई,
सरसों, धान, ईख बतियाते
रस की धार चुई
हिम प्रदेश में जमा
मौन का पर्वत पिघला है।''[115]

* * *

''माँ की बात छेड़ दी मन ने
सुधि आयी तब गाँव की
बातें खूब हुआ करती थी
जलती आग अलाव की।
कहाँ गये घूरे का महुआ
पीपल का वह देवस्थान ?
वह बरगद छतनार कहाँ है
छाया जिसकी सुखद महान
कुँआ ताल अब भी हैं लेकिन
पनघट सूना-सूना है,
कहाँ गये वे झाड़ी जंगल
चरवाहों की वंशी तान ?
लहर ढूँढ़ती
नदी किनारे आहट
राधा पाँव की?''[116]

यहाँ हम नवगीतों के वैशिष्ट्य को रेखांकित करना चाहेंगे जहाँ 'नवगीत' परम्परित गीत अवधारा से अपनी अलग पहचान बना पाया है। नवगीत का सम्पूर्ण वृत्त उसकी आन्तरिक संचेतना और उसका बाह्यरूप दोनों ही तथ्य उसकी विशिष्ट संज्ञा को परिभाषित करते हैं। नवगीतों को विशेष रूप से रेखांकित करने के लिए निम्नांकित तथ्य विशेष ध्यातव्य हैं -

(1) नवगीत में नये प्रयोग की संभावनाएँ

(2) सामायिक बोध का औचित्य

(3) सामाजिक सरोकार

(4) राजनैतिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक संचेतना के नये स्वर

(5) नवीन छन्द प्रयोग

(6) भाषा के बदलते तेवर

(7) व्यंग्य का औचित्यपूर्ण प्रयोग

(8) आन्तरिक संचेतनाओं के साथ सौन्दर्यवादी अभिगम

(9) वैश्विक धरातल पर सोच का विस्तार

(10) मानवीय संवेदनाओं का संस्पूर्श

(11) मानसिक उद्वेगों का प्रस्फुटन

(12) आम आदमी की उपस्थिति का एहसास

(13) कमजोर वर्ग का प्रतिनिधित्व तथा उसका मौलिक एवं नवीन स्वरूप

नवगीत की मौलिक उद्भावना :- कथ्यगत नवीनता को हम मौलिक उद्भावना कह सकते हैं। जैसे मैथिली शरण गुप्त ने राम की परम्परागत कथा में सत्याग्रह स्वावलम्बन आदि का जो समावेश किया है, वह सब उनकी युगानुरूप मौलिक उद्भावना है। वास्तव में कोई भी कवि कथ्य में नवीनता के बिना सार्थक एवं प्रासंगिक रचना नहीं कर सकता। सभी कथ्यगत प्रयोग महत्वपूर्ण रहते हैं, किन्तु शिल्प में प्रयोग करने वाले कवि बहुत जल्दी अपना ध्यान आकर्षित करते हैं। छायावादी कवियों में प्रसाद और निराला दोनों मौलिक उद्भावनाओं के

धनी हैं, किन्तु अन्यान्य अनेक विशेषताओं के साथ मुक्त छन्द के प्रयोग के कारण निराला विशेष रूप से सम्मानित हुए। गतानुगतिक कथ्यवाले गीतकार शिल्प की चमक-दमक के कारण कुछ देर के लिए भलें आकर्षित करें किन्तु जब तक भावबोध में मौलिकता की दृष्टि समाविष्ट नहीं होगी तब तक रचना महत्वपूर्ण नहीं हो सकती। गीतिकाव्य परम्परा के अक्षुण्ण रखने के लिए नवगीत में कथ्य व शिल्प दोनों स्तरों पर प्रयोग का औचित्य इसीलिए है, उसकी आवश्यकता थी अन्यथा गीत मर जाता। नई कविता ने वर्तमान समाज से अपने को जोड़ा, उसकी समस्याओं को अभिव्यक्ति दी। उन्हीं सम-सामायिक समस्याओं से नाता जोड़े बिना गीत को कोई चारा नहीं था। अपने अस्तित्व को सार्थक एवं अलंकारिक बनाने के लिए यह परिवर्तन गीतों में अवश्यम्भावी था। इसलिए नवगीत में प्रयोगों का औचित्य है।

समसामायिक संचेतना :-

सामायिकता के अंतर्गत वैज्ञानिक दृष्टि का समावेश होता है। इस दिशा में नवगीत अग्रसर हुआ है, **''नवगीत विज्ञानोन्मुख है और आधुनिक यथार्थ का प्रत्येक पक्ष उसमें मुखरित हुआ है। आधुनिकता का विशिष्ट गुण है मानवप्रगति के प्रति आस्थाभाव। समसामयिकता का बोध आधुनिकता की सोच है। अपनी प्रकृति में आधुनिकता मानव प्रगति द्वारा जोड़े गये जीवन के नये अर्थ और नये परिवेश की स्वीकृति है। आधुनिकता वस्तु अनुभूति को देशकाल की सापेक्षता प्रदान करती है। आधुनिकता पूर्वाग्रह से मुक्त बौद्धिक चेतना को प्रत्येक अनुभूति का अविभाज्य अंग मानती है।''**[117] इस प्रकार आधुनिकता यथार्थ को अभिव्यक्ति देने हेतु तत्पर रहती है। संवेदनशील कवि इन्हीं धरातलों से बीज चुनकर कालजयी रचनाओं की सृष्टि किया करता है।

जीवन के प्रति आध्यात्मिक अथवा परम्परावादी दृष्टिकोण न रखकर यथार्थ की गतिशील शक्ति को स्वीकार करने का आग्रह आधुनिकता का एक लक्ष्य है - **''आधुनिकता इसीलिए कोई रुढ़ि नहीं है वह एक ऐतिहासिक परिधि है जो एक युग के मानसिक धरातल में कुछ नये संदर्भ जोड़ती है। पुरानों को या जो सतत गतिशील नहीं रह पाते, अपने से पृथक भी करती है। समसामयिकता, इसीलिए आधुनिकता के सन्दर्भ में उन समस्त शाश्वत मूल्यों और सत्यों को घात प्रतिघात द्वारा बदलती है, जो जड़ है अथवा जो जीवन के**

बाहुल्य के साथ आगे बढ़ने में असफल है। फिर शाश्वत की परिधि में बंधकर न तो कोई मानवानुभूति आंकी जा सकती है और न वह मानवीय संवेदना जो जीवन के प्रति न्याय कर सकती है।''[118]

आधुनिक युग संक्रमण का युग है। नये परिवेश में परम्परित मूल्य टूट रहे हैं, नये विकसित प्रतिमान और मूल्यों को ग्रहण करने में मानव पूर्ण सक्षम नहीं है। वह उसके अनुरूप बन रहा है, यही प्रयोग गीतों के कलेवर में भी ढला है। पूर्वाग्रहों और पूर्व निश्चयों से भिन्न मनुष्य की सक्रियता, समसामयकिता में मुखरित हुई है। इसमें अन्तर वेदना प्रस्फुटित होती है। परिवेश की व्यापकता और संवेदना की गहराई आत्मदृष्टि से उपजी वस्तुस्थिति की सर्वेक्षण क्षमता आधुनिक चेतना को समृद्ध बनाती है, यह युगबोध, काल बोध का उद्योतक है।

आधुनिकता शब्द से यह ध्वनि निकलती है कि परम्परा से जो चला आ रहा है, उससे अलग नया कुछ ही साहित्य में यह अन्ततः सत परिणाम ही लाती है। **''प्रचलित कलामूल्यों तथा भाव प्रणालियों से विमुख होकर अस्वीकृत मार्गों पर अग्रसर होनेवाली हर नूतन सर्जनात्मक चेतना निश्चय ही काव्य के प्रसार और उसकी भावी समृद्धि का कारण बनती है। बौद्धिक नवोन्मेष की यह प्रक्रिया अन्वेषी आधुनिकता से आरम्भ होकर मानवीय मूल्यों से जटिल स्तरों को छूती हुई एक और नये प्रत्यावर्तन पर पहुँची है जहाँ से आगे विस्तृत परिधि है। अब वह विज्ञान, प्राविधि, निर्मम, यंत्रमयता व्यवस्थाओं की टूटन और नई सामाजिकता तथा अंतरिक्ष युग के रोमांचक, रहस्यमय विशेष के साथ आदमी की स्थिति की व्याख्या करना चाहती है, उसकी सम्पति बिठाना चाहती है।''**[119] यहाँ माथुर जी ने आधुनिक चेतना का काव्य में स्थान, उससे होनेवाला काव्यगत परिवर्तन आदि की विराट व्यवस्था कर आधुनिक चेतना की अवधारणा स्पष्ट की है। आधुनिकता की प्रतिष्ठा में काव्य के बाह्यरूप में वैभिन्य आता है, साथ ही नूतन संवेदनोओं का प्रवेश उनमें होता है।

वस्तुतः आधुनिकता में किसी तात्कालिक फैशन या चमत्कार का अनुकरण नहीं होता अपितु उस युग की चेतना समस्या के अनुरूप 'संवेदन क्षमता', अभिव्यक्ति, प्रतिक्रिया आदि में आधुनिकता होती है। विश्वक्षितिज पर उदित पक्ष निरपेक्ष समस्याओं के निराकरण की युगानुकूल अभिव्यक्ति भी इसके अन्तर्गत आती है। परन्तु बाद में आगे चलकर आधुनिकता ने

भी कुछ विपरीत अर्थग्रहण किया है। **"इसमें संभवतः एक मत हो सकता है कि आधुनिकता संवेदनशील मानस की सृजनशील, वैचारिक एवं अनुमूल्यात्मक प्रतिक्रिया है जो उन्नीसवीं शताब्दी की विस्फोटक परिस्थितियों के परिणाम स्वरूप प्रारंभ होने लगी और बीसवीं शताब्दी के प्रथमार्ध में क्रमशः परिस्थितियों की जटिल टकराहट में तीव्र ओर गहन होकर चरम रूप में असहिष्णु बनती गई।"**[120]

इस आधुनिक चेतना की तह में अनेक तथ्यों की गुपचुप और अनेक तथ्यों की उघड़ी यंत्रणा है। इन तथ्यों का स्वरूप शिव-अशिव दोनों प्रकार का है। यथार्थपरक दृष्टिकोण और व्यक्ति को महत्त्व देते का सकारात्मक पक्ष इसमें है तो उसका नकारात्मक पक्ष यह है आधुनिक चेतना के विस्तार के सार्थक ज्ञान की सार्वभौमिकता एवं उसके शिवत्व के प्रति तीखी चुनौती का भाव पैदा हुआ। एक तरह से हम पाते हैं कि चिंतनशील एवं संवेदन प्रवण मनुष्य एक ऐसे आवर्त में घिरकर एवं अकेलेपन की एक कटु अनुभूति से भरकर अपने ही चारों ओर चक्कर काट रहा है। उसके सामने न केवल वैयक्तिक जीवन की सार्थकता और मतव्य के प्रति अबोधता का दमघोंट एहसास है बल्कि समूची सभ्यता और संस्कृति की गति, शक्ति, सार्थकता, प्रयोजन इत्यादि के प्रति गहन साशंकता से वह पीड़ित है।"[121]

इस प्रकार की समग्र संचेतनायें नवगीत में दृष्टिगत होती है। क्योंकि इन नवगीतों में अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों ही स्तर पर एक नव्यता का एहसास लगातार बना रहता है। आधुनिकता में साहित्य को भाषा के संकटकाल में अनेक हथियार दिये व्यंग्य शब्दों का क्रीडापूर्ण संयोजन विराम चिन्हों की मुखरता, मितव्ययिता, बिम्बों और प्रतीकों का अर्थगहन प्रयोग शब्दों की समस्त आंतरिक और बाह्य शक्तियों का काव्यात्मक उपयोजन, भाषा और वस्तु के प्रतीक एक टेढ़ा रिश्ता रखकर प्रगटीकरण आदि। काव्य और काव्येतर को अप्रत्यक्षतः विवेक सिखाया, मानवीयता को नष्ट करने पर तुली हुई तकनीकी और सामाजिक आर्थिक शक्तियों के प्रति स्वर बुलंद किया। सामयिकता, शाश्वतता, क्षणवाद इत्यादि संकल्पनाओं का प्रासंगिक वैचारिक विश्लेषण किया गया। कविता और भाषा के रिश्ते की उलझन भरी समस्याओं को सशक्त संकेत दिये गये। मानवीय जीवन की सार्थकता और मानवीय नियति की

संभावनओं के सम्बन्ध में प्रश्न उठाये गये है। यह नितांत स्वाभाविक था कि आधुनिकता के नाम इन हथियारों को नवगीत में भी खुलकर प्रयोग किया जाए और इन स्वरों को न्यूनाधिक रूप में वाणी दी जाए। नवगीत का यही रूप है।

सम्पूर्ण वृत्त का परीक्षण किया जाय तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि गीत और नवगीत दोनों में ही एक तात्विक समानता तो है ही। नवगीत गीतों के तत्व से समन्वित है, साथ ही उनमें आधुनिकता की संगति भी है। इसमें भावुकता, तन्मयता, माधुर्य, आत्मगतता, कोमलता, भावान्वित जैसे गीतों के तत्व हैं और ये तत्व आधुनिकता की चेतना, वैज्ञानिक दृष्टि, विकसित बौद्धिकता लोक जीवन और व्यावहारिक जीवन के बिम्ब प्रयोग की अभिनव दिशाओं से घुल-मिल गए हैं। सातवें और आठवें दशक के नवगीतकारों के अपने अलग तेवर रंग, मिजाज और अन्दाज है पर सभी इस अर्थ में समान धरातल पर अवस्थित हैं कि उनमें आधुनिक चेतना की गहरी पहचान और भारतीयता की संशक्ति समानरूप से है। कथ्य और प्रस्तुति के आधार पर नवगीतकारों ने इस आधुनिक बोध को अलग-अलग स्तरों पर प्रस्तरित किया है। इनमें नवीन उपमान तथा मौलिक प्रतीकों के विधान संवेद होते है जो कथ्य को अधिक प्रस्तार देने के लिए उपयुक्त होते हैं। जैसे-

''सुनो तथागत !
एक नया युग आनेवाला है
पेड़ मरेंगें
और तुम्हारा बोधिवृक्ष भी
नहीं रहेगा
अगला युग तो
हरियाली की
पोथीवाली बात करूंगा
तितली की
अगली नस्लों का रंग भी काला है।''[122]

इसी प्रकार यह पंक्तियाँ देखिए -

''हाँ, समय अब आ गया है
हम नया सूरज उगाएँ
मंत्र बीजें नए यगु का
क्योंकि पिछली प्रार्थनाएँ हुई बासी
जिन्हें पूजा, देव वे सब
हुए कपटी, और विलासी
आओ, मिलकर
नया मंदिर ढाई आखर का बनाएँ।''[123]

उन्हीं अनुभूतियों को प्रकारान्तर से नयी अर्थवता में संजोकर सतीश कौशिक कहते हैं -

''सन्नाटों से भरी हुई इन मीनारों में
शब्द व्यथित हो बिला गए है
अन्तर्मन की पीड़ा जब
कविता गढ़ती है
परत नई दहशत की
होठों पर चढ़ती है
छद्म मेष धर, कई लुटेरे
रोज लूटकर
सपनों वाला किला गए हैं।''[124]

नई उद्बोधना को अपने अलग अंदाज में व्यक्त करने वाले विष्णु विराट वर्तमान प्रदूषित सामाजिक अर्थ-संगतता को नकारते हुए अपने अंदर के इंकलाब को इस तरह व्यक्त करते हैं-

''दम घुटा जाता है
भीतर-भीतर
खिड़कियाँ खोलिए हुजूर

आपके कांच के चेहरे की चमक

हमारे हाथ के पत्थर तक है

ये न सोचो ये आग, ये लपटें

ये हादसा इसी शहर तक है

ये वो आँधी है

जो रूकती ही नहीं

जहर न घोलिये हुजूर।''[125]

अपनी जिन्दगी भी तमाम हताशाओं को राजेन्द्र काजल इस नवगीत में प्रस्तुत कर रहे हैं -

''दूर तक न अपना कोई

गंध का सपना न कोई

पड़ गये सब रंग धुंधले

गीत के उनबान बदले

बंद कमरों की उदासी

कल्पनाओं में संजोई।''[126]

वर्तमान की कठिनाइयां नवगीत में बहुत विशेष आकार लेकर उपस्थित हुई हैं। हिंसक और छंदपूर्ण वर्तमान, कठोर और निर्दय वर्तमान, शीलरहित वर्तमान, ईमान रहित वर्तमान, कौरव सभा का पर्याय वर्तमान, जलते हुए जहाज पर खड़ा वर्तमान, खोखला वर्तमान, जलते हुए सवालों पर लेटा हुआ वर्तमान, आदमी को भीड़ में बजाता हुआ वर्तमान, मैली आँखोंवाला वर्तमान, पंजीवाला वर्तमान, नागफनियाँ उगाता वर्तमान, तनी बरहियों की सुरंग में चलने को विवश करता वर्तमान, मूल्यहन्ता वर्तमान, खरीद-फरोक्त करता वर्तमान, आखेटक वर्तमान, और परम्पराओं को काटता वर्तमान नवगीत के भाव बोध का केन्द्रक बना है। ऐसे वर्तमान में जीने का अर्थ ही है एक बहुत बड़ी मुश्किल के बीच खड़ा होना, नवगीत में इस वर्तमान की न केवल व्याख्या है अपितु इसे प्रतिवाद के औजार रूप में भी सामने लाया गया है।

कोई भी गीत साहित्यिक गीत कविता होने की शर्त पर ही साहित्यिक विवेचना का अधिकारी होता है। स्वतन्त्रता के बाद आये परिवेशगत बदलाव के साथ-साथ कविता के स्वरूप में बड़ा परिवर्तन आया है। इस क्रम में कविता के प्रतिमान बदले गए गीत और नये प्रतिमानों की खोज की गयी कविता की रचना-प्रक्रिया में जमीन-आसमान का अन्तर होते हुए भी कितने नवगीतकारों ने अपने गीतों को कविता ही कहा और अपनी समझ से ये गीत के फार्म में कविता ही लिखते रहे यह बहुत कड़वा सच है। आज वे भले ही ''नवगीत'' की अगुआई का श्रेय लेना चाहे पर तब नवगीत उनके लिए क्या था; खूब जानते हैं। इसलिए कविता के नये प्रतिमानों को ग्रहण करने की चेतना तो इनमें रही ही है। ऐतिहासिक सचाई यह है कि प्रसिद्ध अलोचक डॉ. नामवर सिंह की समीक्षा कृति 'कविता के नये प्रतिमान' ऐसे वक्त पर आयी जबकि नक्सलवादी किसान संघर्ष अपना एक दौर पूराकर चुका था और आश्चर्य की बात यह है कि, यहाँ इसकी अनुगूँज तक न थी तथा इसमें जो प्रतिमान निर्धारित किये गये वे उन कविताओं पर आधुत थे जो कविता के एक विशेष सम्प्रदाय की प्रतिनिधि थी। इस समय आलोचना का स्वर इतना उभार पर था कि क्या पूछना ? इस प्रकार आठवें दशक में कविता और गीत की रूपवादी रुझान को बरकरार रखने में नामवरजी और अन्य महत्वपूर्ण आलोचको ने बड़ी भूमिका अदा की।

नवगीतों में केवल संत्रास, दमन, शोषण, कुण्ठा, पीड़ा, आँसू, विलाप जैसे नकारात्मक और उदासी भरे तत्व ही नहीं समाहित हैं बल्कि इनमें जीवन के सौन्दर्य को उद्घाटित करने वाला क्षण भी है। इसलिए नवगीत के सौन्दर्य पक्ष पर भी विचार कर लेना चाहिए। हम जानते हैं कि नारी और प्रकृति के माध्यम से काव्य में सौन्दर्य-सृजन की परिपाटी चली आ रही है। नवगीत में भी इस परिपाटी के अनुरूप नारी के विविध-चित्र अंकित हैं। हाँ, इन चित्रों से जो नारी अंकित होती है वह घरेलू कामकाज में लिप्त मध्यवर्गीय नारी है। नवगीतकार द्वारा एक से एक सुन्दर चित्र न्यौछावर हैं अपनी सहचरी पर। इस क्रम में दैनिक उपयोग के आभूषण, कुंकुम, रोली, सुगंध, काजल, बिंदिया, सेन्दुर, मेहंदी, महावर आदि से लसित नारी के मोहक चित्र उसकी सौन्दर्यता को उद्भाषित करते हैं। नवगीतकारों के इन तमाम स्मृति मूलक प्रेमगीतो के पीछे जो नारी खड़ी है वह एक विशेष सामाजिक परिवेश को ध्वनित करती है। यह नारी

पुरुष की रूप लिप्सा को तृप्त करती ही है उसे हल्के-फुल्के तमाम सुख सुविधाएँ देती है जो उसकी पारिवारिक भूमिका से सम्बद्ध है।

''आटा मलते हाथ
बिछौना करता मुख
कौन दे रहा है ये हल्के-फुल्के सुख ?
किसने धोये केश
प्राण तक गमक उठे ?''[127]

घरेलू कामकाज के लिए नारी की उपयोगिता मध्यवर्गीय परिवारों की संस्कृति का एक अंग है। इसलिए आस्तीन का बटन टूटने पर या कुर्ते की सिवन खुलने पर उसकी याद नवगीतकार को आती है। इन यादों के साथ जुड़ी नारी ही नवगीत की वास्तविक नारी है। ऐसे में रचनाकार की वैयक्तिक चेतना का बलवती हो उठना अत्यन्त स्वभाविक है। प्रकृति सम्बन्धी विवेचना तो ऊपर की ही जा चुकी है। आंचलिक प्रकृति का सम्मोहन गीत में निर्विवाद रूप से प्रतिष्ठित है। इसके अतिरिक्त कुछ विशेष किस्म के पुष्प बीच-बीच में आकर उसके रूप पक्ष को आकर्षक बनाते हैं। ये पुष्प हैं- पलाश, अमलताश, गुलमुहर, हरसिंगार आदि। ये बहुधा ग्रीष्मऋतु में फूलने वाले हैं। इनके अलावा कुछ खास वृक्ष आते हैं जो छायादार तो हैं ही हमारे सांस्कृतिक बोध को भी तृप्त करते हैं। जैसे- बरगद, पीपल, नीम, जामुन, अशोक आदि। ये सब नवगीतकार के सौन्दर्य बोध की प्रतिछवियाँ हैं जो सांस्कृतिक छबि बनाती हैं और मन के बीच भी नवगीतकार प्राकृतिक उपकरणों का प्रयोग करता है। इस प्रकार वह एक ऐसा वातावरण सृजित कर लेता हैं जो देखने में बड़ा रूचिर और सांस्कृतिक प्रतीक होता है। उसकी रचनाओं में तुलसी का चौरा, पूजाघर का दीपक, रंगोली-संध्याएँ, मन्दिर, देवल, देहरी पर छपे स्वस्तिक, सकुन बाँचते खंजन, गंगाजल, अल्पना के रंग में डूबा हुआ आंगन आदि आते हैं जिनसे उसके गीतों का श्रृंगार हो जाता है। नारी और प्रकृति के अतिरिक्त ये सांस्कृतिक अवयव भी नवगीत रचना को सुन्दर बनाते हैं। 'उदासी' की प्रतिष्ठा करते हुए नवगीतकार उसे बड़े कलात्मक रूप में जब इस प्रकार कहता है- 'लीपती आंगन उदासी रोज गोबर से' तो उदासी और उदासी से मुक्त होने का उसका तनाव दोनों उभरकर एक साथ प्रस्तुति पा जाते

हैं। कहना न होगा कि नवगीत का सौन्दर्य इसी द्वन्द्व के बीच विकसित हुआ है।''128

अन्त में यह कहा जा सकता है कि नवगीत समष्टिगत सहज संवेदनओं का रागात्मक प्रकाशन है जिसमें समाज के प्रथम व्यक्ति से अन्तिम व्यक्ति तक की उपस्थिति दर्ज है। गीत जहाँ व्यक्तिगत संकुचन के दायरे में अपने-अपने राग अलापते रहते हैं, वहीं नवगीत सामयिक बोध से सरोकार रखते हुए समाज के सम्पूर्ण वृत्त का प्रतिनिधित्व करते हैं और आम आदमी के सहज जीवन से रूबरु होकर सामने आते हैं।

* * *

संदर्भ-सूचि

1. नवगीत दशक भाग-2, सं. शंभुनाथ सिंह, पृ. 15-16
2. नई कविता पुनर्मुल्यांकन - सं ऊषारानी, पृ. 75
3. हिन्दी सैद्धांतिक आलोचना- सं. डॉ. रूपकिशोर मिश्रा, पृ. 307
4. नई कविता पुनर्मूल्यांकन - सं. उषारानी, पृ, 307
5. नई कविता पुनर्मूल्यांकन - सं. शिवकुमार सिंह , पृ, 21
6. नई कविता पुनर्मूल्यांकन - सं. अनुप अशेष, पृ, 34
7. नवगीत दशक भाग-3 - सं. राजेन्द्र गौतम, पृ. 30
8. नवगीत दशक भाग-1, सं. शंभुनाथ सिंह, पृ. 141
9. अविराम चलमधुवन्ती- सं. वीरेन्द्र मिश्र, पृ. 33
10. नये-पुराने, सं. दिनेश सिंह, पृ. 129
11. नये-पुराने, सं. दिनेश सिंह, पृ. 132
12. नवगीत अर्द्धशती- योगेन्द्र दत्त शर्मा पृ. 122
13. भव्य-भारती, नवगीत शिखर (1999) पृ. 19
14. सोनमछरी में बसी , पृ. 20
15. अविराम चल मधुवन्ती-सं. विरेन्द्र मिश्र पृ.
16. नवगीत दशक भाग-2, सं. अनूप अशेष पृ. 38
17. वही
18. हिन्दी नवगीत उद्‌भव और विकास-सं. राजेन्द्र गौतम पृ. 82
19. हिन्दी नवगीत उद्‌भव और विकास-सं. राजेन्द्र गौतम पृ. 82
20. हिन्दी नवगीत उद्‌भव और विकास-सं. राजेन्द्र गौतम पृ. 82
21. हिन्दी नवगीत उद्‌भव और विकास-सं. राजेन्द्र गौतम पृ. 82
22. हिन्दी नवगीत उद्‌भव और विकास-सं. राजेन्द्र गौतम पृ. 82
23. हिन्दी नवगीत उद्‌भव और विकास-सं. राजेन्द्र गौतम पृ. 82
24. नये-पुराने, सितम्बर 1998 सं. नीलम श्रीवास्तव पृ. 158
25. नये-पुराने, सितम्बर 1998 सं. नीलम श्रीवास्तव पृ. 158
26. रविन्द्र भ्रमर के गीत, सं. रवीन्द्र भ्रमर पृ. 67
27. वंशी और मादल - सं. ठाकुर प्रसाद सिंह पृ. 10
28. गीत विहग उतरा - सं. रमेश रंजक पृ. 10
29. मेंहदी और महावर - सं. उमाकान्त मालकीय पृ. 17
30. हर सिंगार कोई तो हो- सं. माहेश्वर तिवारी पृ. 28
31. वंशी और मादल- सं. ठाकुर प्रसाद सिंह, पृ. 9
32. नवगीत दशक भाग-1, सं. शंभुनाथ सिंह, पृ. 34
33. कविता में सुबह, सं. रामविलास शर्मा पृ. 22
34. रवीन्द्र भ्रमर के गीत- सं. रवीन्द्र भ्रमर पृ. 12
35. गीत विहग उतरा - सं. रमेश रंजक, पृ 41
36. गाता हुआ दर्द- सं. रामावतरा त्यागी पृ. 46

37. जो नितांत मेरी है-सं. बालस्वरूप राही, पृ. 27
38. पाँच जोड बांसुरी - सं. परमानन्द श्रीवास्तव, पृ. 101
39. कुहरे की प्रत्यंचा - सं. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' पृ. 50
40. शान्ति गर्न्धव - सं. वीरेन्द्र मिश्र, पृ. 63
41. गुलाब और बबूल वन - सं. रामावतर त्यागी, पृ. 66
42. हिन्दी गीतिकाव्य - सं. डॉ. रामेश्वर प्रसाद द्विवेदी पृ. 425
43. हिन्दी नवगीत उदभव और विकास- सं. राजेन्द्र गौतम पृ. 126
44. नवगीत दशक भाग-2 सं. भगवानस्वरूप सरस पृ. 53
45. नवगीत दशक भाग-2 सं. श्री कृष्ण तिवारी पृ. 108
46. हिन्दी नवगीत उद्‌भव और विकास- सं. मा. तिवारी पृ. 1
47. रवीन्द्र भ्रमर के गीत - सं. रवीन्द्र भ्रमर, पृ. 22
48. यात्रा में साथ-साथ-श्याम निर्मम, सं. देवेन्द्र शर्मा, इन्द्र- पृ. 75
49. गीत पर्व आया है - सं. माहेश्वर तिवारी पृ. 83
50. नवगीत दशक भाग-2 सं. गुलाबसिंह, पृ. 98
51. नवगीत दशक भाग-1, सं. ठाकुर प्रसाद सिंह, पृ. 123
52. नवगीत उद्‌भव और विकास, सं. शंभुनाथ सिंह, पृ. 121
53. नवगीत दशक भाग-1, सं. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' पृ. 47
54. हिन्दी नवगीत उद्‌भव और विकास-सं. राजेन्द्र गौतम, पृ. 178
55. हिन्दी नवगीत उद्‌भव और विकास-सं. शंभुनाथ सिंह, पृ. 218-219
56. नवगीत दशक भाग-3-सं. सुधाशुं उपाध्याय, पृ. 62
57. हिन्दी नवगीत उद्‌भव और विकास-सं. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', पृ. 166
58. नवगीत दशक-सं. अखिलेश कुमार सिंह, पृ. 20
59. रवीन्द्र भ्रमर के गीत- सं. रवीन्द्र भ्रमर, पृ. 47
60. बन्द न करना द्वार-सं. रमानाथ अवस्थी, पृ. 24
61. हिन्दी गीतिकाव्य- सं. डॉ. रामेश्वर प्रसाद द्विवेदी, पृ. 430-431
62. दर्द दिया है- सं. नीरज, पृ. 10
63. धरती गीताम्बरा- सं. वीरेन्द्र मिश्र, पृ. 10
64. आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना- सं. पुत्तूलाल शुक्ला पृ. 16
65. आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना- सं. पुत्तूलाल शुक्ला पृ. 18
66. आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना- सं. पुत्तूलाल शुक्ला पृ. 18
67. आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना- सं. पुत्तूलाल शुक्ला पृ. 19
68. आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना- सं. पुत्तूलाल शुक्ला पृ. 20-21
69. पत्राचार द्वारा प्राप्तिउत्तर- सं. शंभुनाथ सिंह, पृ. 152
70 पत्राचार द्वारा प्राप्तिउत्तर- सं. रमेश रंजक, पृ. 52
71. पत्राचार द्वारा प्राप्तिउत्तर- सं. देवन्द्र शर्मा 'इन्द्र' पृ.
72. तारसप्तक-सं. प्रभाकर माचवे पृ. 186
73. नवगीत दशक भाग-2-सं. ओम प्रभाकर, पृ. 57
74. नवगीत दशक भाग-2-सं. उमाशंकर तिवारी, पृ 70

75. हिन्दी गीतिकाव्य-सं. डॉ. रामेश्वर प्रसाद तिवारी, पृ. 359
76. नवगीत दशक भाग-1-सं. शंभुनाथ सिंह, पृ. 17
77. नवगीत दशक भाग-1- सोमठाकुर, पृ. 30
78. नवगीत दशक भाग-1-सं. देवन्द्र शर्मा 'इन्द्र' पृ. 43-44
79. नवगीत दशक भाग-1-सं. देवन्द्र शर्मा 'इन्द्र' पृ. 45
80. नवगीत दशक भाग-1-सं. रमेश गौतम, पृ.
81. नवगीत दशक भाग-1-सं. विनोद निगम, पृ.
82. नवगीत दशक भाग-1-सं. शंभुनाथ सिंह, पृ.
83. नवगीत दशक भाग-2-सं. शंभुनाथ सिंह, पृ. 16
84. नवगीत दशक भाग-2-सं. कुमार शिव, सं. शंभुनाथ सिंह पृ. 26
85. नवगीत दशक भाग-2-सं. कुमार शिव, सं. शंभुनाथ सिंह पृ. 46
86. हाथ से छूटे कबूतर- विष्णु विराट, पृ. 17
87. हाथ से छूटे कबूतर- विष्णु विराट, पृ. 17
88. हाथ से छूटे कबूतर- विष्णु विराट, पृ. 37
89. हाथ से छूटे कबूतर- विष्णु विराट, पृ. 46
90. नये पुराने गीत अंक-4, (1999) पृ. 109
91. शब्दों में सूर्य बिम्ब, पृ. 9
92. नये पुराने गीत - गुलाब सिंह, पृ. 102
93. नये पुराने गीत - गुलाब सिंह, पृ. 103
94. नवगीत शिखर-भव्यभारती, पृ. 105
95. नये-पुराने गीत, सितम्बर- 1998 पृ. 112
96. नया प्रतीक अं. सित्म्बर 1977, पृ. 80
97. नवगीत शिखर भव्यभारती 1999 पृ. 77
98. रश्मिः नवगीत अंक, गोपी वल्लभ सहाय पृ. 27
99. नवगीत अर्द्धशती-डॉ. ओम प्रभाकर, पृ. 72
100. रश्मि, नवगीत अंक-सं. पृ. 233
101. नवगीत अर्द्धशती, पृ. 233
102. नये पुराने, गीत अंक -4, सितम्बर 1999 पृ. 132
103. नवगीत अर्द्धशती-पृ. 124
104. भव्य भारतीः नवगीत शिखर अंक 1999 पृ. 34.
105. नवगीत दशक भाग-2 (भूमिका) पृ. 16
106. नवगीत दशक भाग-2 (भूमिका) पृ. 20
107. राहु सांकृत्यायन के श्रेष्ठ निबंध, पृ. 235
108. नवगीत अर्द्धशती पृ. 131
109. नवगीत अर्द्धशती पृ. 135
110. भव्यभारती : नवगीत एिकर अंक 1999 पृ. 26
111. सुर संकेत (जून 1997) सं. कुँवर बेचैन पृ. 70
112. नवगीत अर्द्धशती पृ. 60

113. भव्यभारती-नवगीत शिखर 1999 पृ. 28
114. नवगीत अर्द्धशती पृ. 155
115. सार्थक - देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' (अक्टूम्बर 1999) पृ. 20
116. भव्य-भारती-नवगीत शिखर-1999, नवीन प्रकाश सिंह, पृ. 42
117. नवगीत दशक भाग-3, जहीर कुरेशी, पृ. 89
118. नई कविता के प्रतिमान-लक्ष्मीकांत वर्मा पृ. 248-249
119. नई कविताः सीमाएँ और संभावनाएँ - गिरिजाकुमार माथुर, पृ. 22
120. कविता की तलाश, डॉ. चन्द्रकान्त बांदिबबेड़कर पृ. 37
121. कविता की तलाश, डॉ. चन्द्रकान्त बांदिबबेड़कर पृ. 38
122. सुनो तथागत -कुमार रवीन्द्र, पृ. 46
123. सुनो तथागत -कुमार रवीन्द्र, पृ. 18
124. परत नई दहशत की हलफनामे सुबह के- सतीष कौशिक पृ. 45
125. दम घुटा जाता है- धुम्रवन से लौट आई लाल परियां, पृ. 22
126. जिन्दगी एक त्रासदी- राजेन्द्र काजल पृ. 21
127. ओम प्रभाकर, पृ.
128. नवगीत का संक्षिप्त इतिहास- अवधेश नारायण मिश्र, पृ. 92-93